सरहद पर सुलह

(कथा-सग्रह)

मेरी तथा कमला की
लाडली बहुरानियो
सरोज और लता
को

सरहद पर सुलह

हरदर्शन सहगल



मेधा बुक्स
दिल्ली-110 032



प्रकाशक
मेधा बुक्स
एक्स-11, नवीन शाहदरा
दिल्ली-110032

मूल्य
150 00

प्रथम संस्करण
1999

आवरण
नरेन्द्र श्रीवास्तव

मुद्रक
अजय प्रिंटर्स
दिल्ली-110032

SARHAD PAR SULEH
(Hindi) stories by
Hardarshan Sehgal
ISBN 81 87110 21-X

कहानियो से पहले की कहानी

प्राय दूसरे-तीसर दिन वह मेरे पास आ पहुँचता है और एक लफ्ज बालता हे—चलो।

मेरे सम्मुख यह 'चलो' एक बडा तथ्य है—चलना, जिसका दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

—तो चलो।

में उसके साथ चल देता हूँ, क्योकि जैसा कि पहले कहा, इससे बचा नही जा सकता।

एक बार वह मुझ जुआघर ले गया था।

एक बार राजनैतिक मण्डली मे जा बैठाया।

एक मर्तबा कीर्तन-भजन की महफिल।

फिर बिल्कुल फालतू आदमिया की महफिल।

एक बार साहित्यिक सगोष्ठी मे।

एक बार अफसरो, बाबुओ, चपरासिया के दरबार मे शिरकत।

चुलबुली लडकियो, मुहल्ले की नेतागीरी करते हुए छुटभैयो तथा नीम-हकीमा से भी 'मेरे उसी ने' मेरा परिचय कराया।

ऐसे ही अनेक बार अनक जगहा, ठिकाना की सैर और पुनरावृत्तियाँ।

मुझे जब-तब कहीं न कहीं खेचकर ले-जाने का मकसद, शायद मुझ अलग-थलग पडे हुए जीव का मनोरजन कराना हो। लेकिन पता नहीं क्या, हमारे मनोरजन के दौरान ही क्या-कुछ होने लगता है। एक अजीबोगरीब उथल-पुथल के हम शिकार होने लगते हैं, जो हम अदर तक झकझोरकर रख देती है। इस उथल-पुथल से हम घबरा जाते हैं, त्रस्त होते हैं। भयावह स्थितिया से हमारा दम घुटने लगता है, और फिर एक ऊब-सी पैदा हाने लगती है।

इन मौजूदा हालात से किनाराकश हो हम 'यहाँ-वहाँ' से भागने लगत हैं। बहुत दूर छिटककर, फिर से अलग-थलग पड जाने की एक गैरमुमकिन कोशिश।

क्याकि तीन-चार रोज भी नर्हा गुजरते कि फिर वही—चलो।

एमी ही जिस-तिस तरह का जमाअता म हम यारहा शुमार हाना पडता है—चाहत न चाहत हुए।

शायद आज हम सब की यही सबसे बडी नियति है—विद्रूप-विसगत स्थितिया स गुजरना।

ता भी यह नितात निराशा का बात नहीं अपितु इन विसगतिया म उवरने जूझने तथा जीवन की विविधताआ की कहानी है चलना—खाज—जुस्तजू।

ता चला।

5-ई-9 सचाद डुप्लैक्स
बीकानर-334003
राजस्थान

हरदर्शन सहगल

अनुक्रम

"रुसदी।"

"रुसदी?" मैं चौंका ओर उसके मुँह से निकला अक्षर दोहरा दिया—"रुसदी।"

"जी, मैं रुसदी हूँ।" उसने दुबारा यही वाक्य दोहराया—"जी मैं रुसदी हूँ जी।"

स्वर की अनुगूँज से मैं नहा उठा जैसे आराधक के सम्मुख उसका इष्टदेव अवतरित हो गया हो। तब मुझे लगा, रुसदी 'एक अक्षर' मात्र नहीं है मेरा बचपन है। मेरे बचपन के सस्कारो तथा इतिहास का अविभाज्य अग है यह रुसदी। मैंने सिर उठाकर देखा। अपनी आदत के खिलाफ आँखे गडाकर उस नारी को घूरा जैसे बार-बार तसल्ली कर रहा हूँ—क्या यही है रुसदी?

मैं अपने को रोक न सका। मगर इतना भर ही कर पाया कि उसका हाथ अपने हाथ मे ले लिया। उस भीड-भरे माहोल म उसे सकोच हो रहा था परन्तु उसने अपना हाथ मेरे ही हाथ मे रहने दिया।

उसके साथ छोटा मुन्ना था। बडे भोलेपन से वह हमे देख रहा था। मैंने लिफ्ट से निकलते हुए गुब्बारवाले को रोका। मुन्ना को एक गुब्बारा और झुनझुना दिलवाया।

रुसदी

अब मेरा हाथ बच्चे के सिर को सहला रहा था।

"इन्हे नमस्ते करो।" दो शब्दो का निर्देश।

बच्चे ने अपने छोटे-छोटे हाथ जोडने की चेष्टा की।

मुझे अच्छा तो लगा परन्तु इससे मेरे तात्कालिक अभीष्ट की गुत्थी न सुलझ सकी। मैं रुसदी का कौन हूँ? यदि वह उससे कहती—यह तेरे मामा चाचा फूफा या यह या वह हैं तो कम से कम कोई रिश्ता तो उभरता (जिसे मैं अपनी पत्नी को भी बता सकता)।

लेकिन नहीं। मेरी तरह ही शायद वह भी न जानती हो कि वह मेरी क्या लगती है। और दूसरे ही क्षण—बिना पुल के निकट आने की स्थिति—न जाने क्या मेरे अन्दर की कुछ पर्तों को लहरा-सी गई।

बचपन मे रुसदी उपनाम की लडकी से मुलाकात हुआ करती थी। उन दिनो जब हमारा परिवार दशहरे की या कोई दूसरी छुट्टियाँ बिताने अपने कस्बे करोड लालीसन जाया करता था।

बहुत ही चचल बेहद शरारती, सबको खिजाने मे माहिर—यही रुसदी की पहचान थी। पर नहीं, रुसदी की असली पहचान तो उसके बार-बार जल्दी रूठ जाने से पैदा हुई थी। और इसी पैदाइश ने 'रुसदी' नाम को जन्म दिया था। रुसदी यानी रूठनेवाली लडकी।

बस यही उसमे एक कमी थी। खुद तो सबके साथ बढ-चढकर छेडछाड शरारत मजाक करती थी परन्तु प्रतिक्रिया मे दूसरा कुछ कहे या करे तो बुरा मान बैठती थी। रूठ जाती थी। फिर रुसदी कहने पर और चिढती थी।

बच्चो से होता हुआ यह नाम बडो की जबान तक जा चढा था। और मजे की बात यह कि बाद में वह स्वय अपना परिचय इसी रुसदी नाम से देने लगी थी। ठीक ऐसे ही बोलती थी जैसे आज अभी-अभी बोली थी—जी मैं रुसदी हूँ जी। और उसी लबी प्रक्रिया मे उसका वास्तविक नाम हम लोगो के बीच से भुला गया था।

पाकिस्तान बनने के बाद हमारा परिवार कानपुर आ बसा था। जब तक माताजी रहीं तब तक पुरानी बाते—अपने वतन की बाते ले बैठतीं—अपने पुरखो के गौरवमय इतिहास को जैसे लोक सगीत का-सा स्वर देकर हम बच्चो को अभिभूत करतीं। आडे वक्त रिश्तेदार कैसे काम आते थे? मुहब्बत किस तरह एक के मन से दूसरे के मन तक रेशमी धागे की तरह पिरोई रहती थी। बच्चे सभी के साँझे थे। और बच्चे भी पूरी तरह से हर एक के आज्ञाकारी। ऐसे बखानो के चलते हमारे परिवार मे रुसदी भी आ उपस्थित होती—पूरे अल्हडपन के साथ।

मरी शादी के बाद मेरी पत्नी को भी माताजी बतातीं—'अरे उस रुसदी की ता बात ही निराली। कितनी छटकनी-सी। इधर स उधर, उधर से इधर फुदकती फिरती—भम्भीरी की तरह। आफ्त की पुडिया—न खुद चैन से बैठती न किसी का चैन से बैठने देती। मगर हर परिवार का काम-काज बढ-चढके कर देती ता थक जाती और हाँफ्ने भी लगती। फिर बडे-बूढा को ऐसे सलाह-मशविरा देती, जैसे सबकी दादी हा।'

माताजी थोडा रुकतीं। फिर खिलखिला पडती। मेरी आर देखती—'अरे इसके ऊपर तो खास मेहरबान रहती। बचपन कितना भाला होता है। कहती—इसी से शादी करूँगी। हम सब औरत कहतीं—अरे, यह ता काला ह। वह उत्तर देती—कोइ बात नहीं। मैं कहती—बडा गुस्सैल है यह। तुझे मारा करेगा। कहती—काइ बात नहीं। मार लिया करे। इस पर यह बडे रौब से कहता—ता चल हमारे घर के भाण्डे माज। सचमुच वह अपने छाट-छाट हाथों से बतन माँजने बठ जाती। मैं बडी मुश्किल से उसे उठाती।'

फिर माताजी लबी आह भरती हुई कहतीं—'इस पाकिस्तान ने किसी को किसी का न रहने दिया। किस-किस को, कहाँ जा पटका। इस वक्त न जाने कहाँ हागी रुसदी। कौन जिंदा है, कौन मर गया, क्या पता।'

लबे-चौडे रिश्तो के जाल का मैं न तो कोई महत्त्व देता हूँ और न ही याद रख पाता हूँ। माताजी ने कभी कुछ बताया हागा तो भी ध्यान नहीं। परन्तु रुसदी से मैं किस स्तर पर जुडा रहा इसकी कल्पना बहुत कठिन भी नहीं। परन्तु वह सब व्याख्याविहीन ता है ही। अब तो कहने को इतना ही है कि बचपन की दोस्ती थी।

आज एकाएक इस विशालकाय अस्पताल की इमारत के साये म लाह के जँगले के सामने एक औरत को खडे पाता हूँ।

"नहा पहचाना ना आपने? मै रुसदी हूँ।"

मैं उस नीचे से ऊपर तक बस देखता ही चला जाता हूँ। एकदम चुप। विश्वास करूँ या न करूँ?

"याद आइ कि नहीं रुसदी?" उसा फिर कहा।

हाँ-हाँ वही स्वर, बचपन की दूरी पार कर गया ह। मरे स्नायु-तन्त्र झनझना उठत है—रुसदी। मेरी एक महक है जा कइ वर्षों आर हजारा मीला का फासला तय करक मुझे घर लेती है। मै जैस लुका-छिपी खेलत-खेलते पुकार उठता हूँ—'रुसदी। रुसदी। रुसदी' कहता हुआ सामने खडी ओरत का खुरदरा हाथ पकड लेता हूँ। इसस अधिक नही।

भरी-पूरी जवानी की रेखा का जल्दी ही फाँद गइ लगती थी वह। साधारण

सलवार-कमीज-चुन्नी स अपना शरीर ढके हुए थी। मैंने अदाजा लगाया कि दिन-भर किसी कारखाने या फैक्ट्री मे कडी मेहनत करती है। गारे रग पर गेहुँए रग की परत आ बैठी है। तो भी उसके तीखे नयन-नक्श मेरे आकर्षण का केन्द्र बने हैं। रिश्ता के जगल से बाहर आ जाता हूँ। असलीयत से रू-ब-रु होने लगता हूँ। मुद्दतो तक सूखी जमीन में पडा कोई बीज बरसात के आ जाने से अकुरित हा रहा है।

मेरे द्वारा छूने और इस तरह देखने से उसके मुखमडल पर एक स्मित-रेखा उभरी है। उस जा अपनापन मिला है, उन्हीं क्षणो में जी रही है वह।

''ओह रुसदी कमाल कर दिखाया तुमने। मुझे पहचान लिया ?''

''अपना को कोई भूल सकता है ? फिर आपका चेहरा तो तने अर्से तक वही का वही रहा है मेरे सामने।''

''हाँ-हाँ मैं ता वही का वही हूँ ही। और तुम तुम भी वही।'' मैं हँसने की चेष्टा करने लगा—''न पहचानने पर काई ओर तो हो नहीं जाते हम दोना।''

''नही मैंने ता आपका एक ही नजर म तभी पहचान लिया था जब आप सीढियाँ उतर रहे थे।''

दरअसल मैं अस्पताल की बडी बिल्डिंग म रास्ता भटक गया था। कई माड मुडता आखिर, सीढियो से उतर आया था ताकि नीचे से ठीक ठिकाने ऊपर पहुँचा जा सकू।

मैंने पूछा—''ता तभी क्या न बुला लिया ?''

''उस वक्त इसकी बुआ साथ थी।''

''तो ?'' मैं अटक गया।

''इसकी बुआ का मेरा किसी आदमी से बालना बर्दाश्त नही हाता, भले ही फैक्टी म मजदूर लाग हमसे उलजलूल मजाक करते रहे। तब तो कोई बात नहीं, यह बुढिया सामने नहीं हाती। छिले हुए हाड-मास से घर पहुँचते ही यह हमारी जेबे टटालती है।'' कहत-कहत रुमदा हाँफने लगी।

''चला रसदी, पहले किसी जगह बैठकर चाय पीते हैं। फिर तीसरे फाटक स ऊपर चलकर वार्ड न० 17 मे चलते हैं। वहाँ मेरी पत्नी दाखिल है। उनसे तुम्हे मिलवाता हूँ।''

''कल आकर मिल लूँगी अगर इसकी बुआ साथ नहीं हुई। कह तो रही थी—अपनी मामी के यहाँ जाएगी। वहाँ गई तो दो-तीन रोज से पहले लौटेगी नहीं। अच्छा अब चलूँ। शटल छूट जाएगी। बुआ का भाई यहीं दाखिल है। कल आऊँगी। ठीक यहीं पर मिलिएगा।''

रुसदी अपने मुन्ने को लगभग घसीटते हुए तेजी से चली गई।

पत्नी स्वस्थ थी। मेरे पहुँचते ही डॉक्टर ने डिस्चार्ज-मीमो पर साइन लिये और छुट्टी दे दी।

मैं पूरे उत्साह म था और सोचा जैसे ही मौका मिलेगा पत्नी को रुसदी के मिलने का पूरा किस्सा सुना दूँगा। परन्तु टैक्सी से लौटते हुए जब उसने देरी से पहुँचने का उलाहना दिया तो मैं मन की बात टाल गया और बोला—"कहा फँस गया था। घर चलकर बताऊँगा।" सोचा—यह कोई साधारण घटना नहीं। धैर्य और विस्तार से इसका वर्णन करना होगा।

दूसरे दिन फिर घर देरी से पहुँचा और बताया—"अस्पताल वालो से अभी हिसाब करना बाकी है।"

मैं और रुसदी हर रोज अस्पताल के अहाते मे मिलने लगे। मैं उसे कुछ रुपए दे देता जिसे वह घर पर ओवरटाइम कहकर दे देती।

मैंने कुछ दिन की छुट्टी ले ली। फैक्ट्री-मैनेजर से मिला। उसे अपना परिचय दिया। पहले तो वह मेरे रैंक से प्रभावित हुआ और दूसरे ही क्षण उछलकर खडा हो गया—"अरे पहचाना नहीं? एक-साथ ही तो पढते थे अपन।"

"हाँ-हाँ" करते मैं उसकी ओर झुका तो उसने मुझे कसकर गले लगा लिया। रुसदी को वहीं लिखा-पढी का काम दिलवा दिया। मैनेजर को बताया कि यह एफ०ए० पास है पर इस बेचारी को किसी बात की समझ नहीं। मैं पाकिस्तान यूनिवर्सिटी से सपर्क बनाए हुए हूँ। हमे इनका सर्टिफिकेट मिल जाएगा।

"ओके ओके।" दोस्त हँसा—"डोंट वरी। सो फार आइ एम हीयर गो एंड एन्ज्वॉय।"

मैं मन ही मन तिलमिलाया। पूछना चाहता था—एन्ज्वॉय स उसका अभिप्राय क्या है? मगर मैं भी हँस दिया—"सिमिलरली दैन आई विल एन्ज्वॉय विद यू ऑलसो।"

खीं-खीं करता दोस्त उठ खडा हुआ—"कम-ऑन।" वह मुझे उसी कॉम्प्लेक्स मे बने क्वार्टर मे ले गया, हाथ मे हाथ लिये। पत्नी को बडे जोश से आवाज लगाई। उसके आते ही मेरे गले मे बाँहे डालकर झूलने-सा लगा—"तुम नहीं जानतीं यह कौन है मेरा दोस्त। मेरा जिगरी। मेरा क्लासफैलो।"

उसकी पत्नी हमे देखकर बहुत खुश हुई। बडी जल्दी-जल्दी अच्छा-खासा खाने का सामान मेज पर लगा दिया।

मैंने सोचा, मैं भी इसी तरह रुसदी को अपनी पत्नी के पास ले जाऊँगा। वह

तो थोड़ा-बहुत रुसदी के नाम से परिचित भी है।

मगर बीमारी के बाद पत्नी का मिजाज बहुत चिड़चिड़ा हो गया है। उसे कुछ और बताकर ज्यादा नाराज नहीं करना चाहता। मैं देर से घर पहुँचने लगा हूँ। रुसदी को व्यवस्थित कर रहा हूँ। पाकिस्तान-दूतावास फोन भी मिलाना होता है। इसी क्रम में आए दिन बहुत-से पत्र लिखकर रजिस्ट्री भी करानी होती है।

छह महीने की कड़ी मेहनत के बाद रुसदी का सर्टिफिकेट आ गया है।

परन्तु अब तक पत्नी के कान भर जा चुके हैं कि मैं बराबर किसी औरत से मिलता हूँ। उसके साथ घूमता-फिरता हूँ।

इससे मैं थोड़ा विचलित हुआ हूँ।

इधर रुसदी के चेहरे पर निखार आ गया है। वह अब सुन्दर दीखने लगी है। उसे पत्नी से मिलवाने के विचार को स्थगित किए चला जा रहा हूँ। उचित अवसर की प्रतीक्षा में हूँ।

रुसदी को अब उसी फैक्ट्री में निरीक्षक का पद मिल गया है। अस्पताल के निकट ही एक किराए के कमरे में अपने मुन्ने के साथ रह रही है। अब भी अपने रिश्तेदारों की सहायता करती है, पर उनसे दबना या घबराना छोड़ दिया है। मैंने पाया है उसकी रुचियाँ, विचार मेरे समान हैं। उससे घंटों बात की जा सकती है।

सर बाजार किसी औरत की तरफ हाथ बढ़ाना, हाथ हिलाना। टा-टा, टाटा या बाय-बॉय करना, उसकी तरफ देखकर खुलकर मुसकराना, और बदले में उस औरत से यही सब वसूल करना।

धीरे-धीरे यही सब होने लगा था हम दोनों के बीच। दफ्तर के साथी फिकरे कसने लगे थे। कुछ कुंठा की कगार पर आ बैठे थे। कुछ कम जान-पहचानवाले 'दिल फेंकू', 'लक्की', 'ग्रेट लक्की' फुसफुसाने लगे थे। पत्नी कुछ ज्यादा ही खीजने लगी थी। मैंने कहा था—"यह रुसदी है, रुसदी, वही जिसका जिक्र माताजी किया करती थीं। मेरी बाल-सखा।"

मेरी बात सुनकर पत्नी ने झुँझलाते स्वर में कहा—"बाल-सखा या सखी? तो एक ही बार ले क्यों नहीं आते यहाँ? मैं ही घर छोड़ दूँगी।"

●

शिखर मार्ग

प्रोफेसर कुणाल मुबइ जा रह थे। वहाँ उन्हे एक विशाल सभा को सबाधित करना था। रिसर्च इस्टीट्यूट ऑफ मॉडर्न फिलॉसाफिकल सासायटी के अध्यक्ष डॉ० अजीज अहमद न इनस बहुत ही आदर से विनती की थी कि वे एक बार आकर उन्हे व्यक्तिगत रूप से कृतार्थ करे। प्रा० कुणाल क सपक म जो व्यक्ति थोडी देर के लिए भी आ जाता है, वह हमेशा के लिए एक तरह से उनका भक्त हो जाता है फिर प्रतिभा सम्पन्न छात्रा की तो बात ही अलग थी। डॉ० अजीज अहमद भी ऐसे ही उनके प्रतिभावान पूर्व-छात्र थे जा होते-हाते आज इस फ्लॉसाफिकल सासायटी के अध्यक्ष-पद पर विराजमान हैं।

प्रो० कुणाल का डॉ० अहमद के पत्र थाड अतराल से मिलते रहते थे। पत्रो के एक-एक शब्द से माना श्रद्धा-रस टपकता था। प्राय यह भी लिखते कि उनका कोई मित्र ऐसा नही है जा प्रोफसर साहब को न जानता हा। भले ही उन्हाने प्रो० कुणाल का प्रत्यक्षत न देखा हो किन्तु वे सब उनकी मान्यताआ और स्थापनाओ से भली-भाँति परिचित हैं। एक तो वे सब उनके पत्र पत्रिकाआ म छपे लेख-निबध पढे बिना

नहीं रहते दूसरा डॉ० अहमद स्वयं भी उन आलेखों की चर्चा, व्याख्या-सहित अपने मिलनेवालों के बीच निरन्तर करते रहते हैं।

प्रो० कुणाल की इस यात्रा में, उनकी एक प्रिय छात्रा भी साथ थी। इसका नाम सुकीर्ति था। सुकीर्ति का सम्बन्ध एक बड़े कुलीन घराने से था। वह बहुत खूबसूरत तथा नाजुक-मिजाज थी। एक तरह से उसे छुईमुई कहा जा सकता है। उसके मुखमंडल पर हर समय जिज्ञासु-भाव छाया रहता था।

दरअसल प्रो० कुणाल में अपना दर्शन-कौशल है। विषय को विस्तार देते समय उसके विभिन्न रूपों-विरूपों का वर्णन करते चलते हैं और इस प्रकार श्रोताओं में तत्त्वज्ञान को अधिक गहराई से समझने-जानने और स्वयं कोई उचित निष्कर्ष निकालने की उत्सुकता भी जागृत करते चलते हैं। अतः सुकीर्ति ही क्यों उन्हें थोड़ा-सा ध्यान से सुननेवाले प्रायः सभी 'जिज्ञासु' की श्रेणी में आ जाते थे। जब वे कॉलेज में पढ़ते थे, तो छात्र-छात्राओं के अतिरिक्त प्रिंसिपल तथा दूसरे लॅक्चरर यहाँ तक कि नगर के प्रतिष्ठित विद्वान् भी उनको सुनने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे। उनकी अलमस्त तबीयत और सरल शब्दावली से लगता जैसे सिर्फ गप्पबाजी हो रही है, किन्तु बाद में उनके वही वाक्य सबके मन-मस्तिष्क पर संगीत-सी अनुगूँज पैदा करते। एक-एक शब्द जैसे विशेष अर्थ खोलता चला जाता। मर्म को छूते ही श्रोता जैसे एक नशे से झूम उठते और उनके सामने फिर से देदीप्यमान हो उठते—गोरे और लम्बे बालोंवाले प्रो० कुणाल।

यही सब बातें थीं जिन्हें डॉ० अजीज अहमद अपने ट्रस्ट के अन्य मित्र पदाधिकारियों आदि को बताया करते और उन सबका मुस्तकिल तकाजा सुना करते—'उन्हें कभी बुलाओ तो।'

अब प्रो० कुणाल की उम्र काफी बढ़ चली थी। अपने घर या शहर से बहुत कम निकलते थे। परंतु इस बार जब डॉ० अहमद राजस्थान के दौरे पर आए तो सबसे पहले रतनगढ़ पहुँचे। यूनिवर्सिटी से सेवानिवृत्ति-पश्चात् अब प्रो० कुणाल, अपने पुश्तैनी मकान रतनगढ़ में ही रह रहे थे। अब की डॉ० अहमद ने एक तरह से जिद पकड़ ली और प्रो० कुणाल को मुंबई आने पर राजी कर लिया।

इसी माह की अट्ठाईस तारीख को उनका भाषण था किन्तु डॉ० अहमद का यह भी आग्रह था कि वे कुछ रोज पहले ही आकर उनका आतिथ्य ग्रहण करें और मुंबई में घूम-फिर लें।

उन्हें दर्शनशास्त्र के विविध पक्षों पर अपनी स्थापनाओं का निरूपण करना था। विशेष रूप से व्यक्तिवाद-सिद्धान्त की मीमांसा करनी थी। व्यक्तिविशेष की अस्मिता क्या सर्वोपरि है? किसी भी व्यक्ति की हित-पूर्ति में समष्टि का दखल

क्या येजा है ? जब दा के हित एव अह परस्पर टकराते हैं ता नई चेतना की चिंगारिया का-कैसा विस्फाट हाता है ? समाज को इनसे कितना लाभ हाता है या कितनी हानि झेलनी पडती है ? क्या ठीक उसी समय नए मूल्यो का उद्भव हान लगता है ? इन सब तथ्या की व्याख्या उनकी नितात अपनी थी, ता भी वे एक तरह से हरवट स्पसस्-फ्रीमेन मिल, हम्बोल्ट तथा माइकल आदि व्यक्तिवादिया के आधारभूत सिद्धान्ता के वडे प्रशसक थे उन्हे सराहते थे। इस समय भी अपनी छात्रा के साथ इन्हीं बिन्दुआ पर चर्चा कर रहे थे।

लेकिन उनकी यात्रा के आरभिक दौर मे ही घटनाक्रम ने एक नया रुख ले लिया। जब गाडी श्रीडूँगरगढ स्टेशन पहुँची तो उन्हाने सोचा कि क्या न सुकीर्ति को कुछ खडी, बडे (पकौडी) खिलाए जाएँ! जैसे ही उन्हाने अपने कम्पार्टमेट की खिडकी ऊँची की तो देखा—सामने कपाडिया साहब खडे हैं। दोना की नजर मिली। कपाडिया साहब लपककर उन तक पहुँचे। उनके साथ कुछ और लाग भी थे। वे सब भी नजदीक आ खडे हुए। कपाडिया साहब गद्गद हो उठे। उनका हालचाल पूछा तथा यात्रा क विषय म जानकारी हासिल की। फिर बडे अपनत्व-अधिकार से बाले—"उतरिए! वाह मुबई तो जा सकते हैं, हमारे पास नहीं ? हमने भी तो कइ बार बुलाया है आपका।"

प्रा० कुणाल बाले—"आप ता हर तरह से मेरे अति निकट हैं। कभी भी हाजिर हो जाऊँगा। इस वक्त तो देखिए " उन्होंने आरक्षण की टिकट दिखलाई—"कायक्रम निर्धारित हा चुका है। डॉ० अजीज अहमद का मुझ स्टशन पर न पाकर अजहद परशानी होगी।"

"वह हम सब देख लेगे।" उनमे से एक व्यक्ति बाला। वह ठेठ राजस्थानी गालाकार पगडी बाँधे हुए था।

कपाडिया साहब ने कहा—"अब ये लोग आपको आगे नहीं बढने देगे। डॉ० अहमद का तार दे दिया जाएगा। आपको हर सूरत मे अट्ठाईस तारीख तक मुबइ पहुँचा दिया जाएगा चाहे जैसे भी। आपको तो कुछ नहीं करना। बस आदेश देना है।"

"आदेश तो आप प्रियजना का।" मुसकराते हुए प्रो० कुणाल अपनी छात्रा के साथ गाडी से उतर आए थे।

कपाडिया साहब यहाँ नगर परिषद के अध्यक्ष हैं। वे कला, साहित्य आदि के रसिक हैं। इस छाटे शहर मे प्रबुद्धजनो की एक बडी जमात है। यहाँ उपस्थित सभी जना के वाट कपाडिया साहब क पक्ष म थे। अत प्रो० कुणाल का गाडी से उतरना पडा था।

बाहर आते ही बातों का जमघट शुरू हो गया। एक बात पहली बात से ऊपर आ रही थी—होड़ की तरह।

जरा शोर थमते ही माथे पर हाथ रखते हुए प्रो० कुणाल ने कहा—"हाँ-हाँ एक बात '' वे किंचित् रुके, शायद उन्हे एक लड़की की याद आ गई थी, फिर बोले—"बहुत पहले एक लड़की थी, बहुत होशियार हमारी यूनिवर्सिटी की यहीं की या इसी इलाके की बिलाग करती थी। क्या नाम था अच्छा-सा बेचारी चेहरे से कुछ डिसफिगर्ड जरूर थी, मगर हर पेचीदा सवाल के जवाब में अव्वल।"

बिल्कुल निकट खड़े थे चौधरी लक्ष्मणसिंह वही जो ठेठ राजस्थानी लाल-पीली पगड़ी बाँधे थे आद्र स्वर मे बोल उठे—"मुझ बदनसीब बाप की बेटी की बात कर रहे हैं सर! आप ही ने तो गाँव का नाम हटवाकर उसे शुद्धप्रिया नाम दिया था।"

"हाँ-हाँ शुद्धप्रिया हां हम उसे भूले नहीं हैं।"

"वह भी कब भूली अपने सर का! लगभग हर राज याद करती है।"

"तो आपके पास यहीं है?"

"हाँ हुजूर, कौन शादी करता उससे!"

"योग्य लोगों की हर कहीं कद्र है विदेशों मे विशेष रूप से। वहाँ शक्ल की नहीं, अक्ल की कद्र होती है। मैं रिकमंड करूँगा तो उसे कहीं पर भी अच्छा जॉब मिल जाएगा। फिर देखिएगा चौधरी साहब! लोग आपके दरवाजे से सरकेंगे नहीं।"

"इतना ही नहीं ।" कहते-कहते लक्ष्मणसिंह रुक गए।

कपाड़िया साहब ने बताया—"ईश्वर वहीं तक रखता तो भी कोई बात रहती। एक एक्सिडेन्ट ने तो उसका रहा-सहा हुलिया ऐसा चौपट कर दिया कि बेचारी घर से निकलने लायक ही नहीं रही।"

ऐसी लड़की की कल्पना मात्र से ही सुकीर्ति मन ही मन बुरी तरह से डर गई। पर वह पूर्ववत् मौन बनी रही।

एक अन्य सज्जन बोले—"प्रो० साहब हमारा सौभाग्य है कि आपने हमारा निमन्त्रण स्वीकार किया। आपके सुभाषणों से हम सब लाभान्वित तो होंगे ही आप एक बार उससे अवश्य मिलें। उसे दिलासा दें। आपको रोकने की यह खास वजह थी।"

स्टेशन के टी-स्टॉल पर खड़े-खड़े प्यालियों की छन्न-छन्न के बीच ये सारे वार्तालाप हो रहे थे और बाहर जीप सबका इन्तजार कर रही थी।

गए रात तक कपाडिया साहब के यहाँ पूरी महफिल जमी। सब इष्ट मित्रो ने वही भोजन किया।

सुबह वे सभी कुछ देरी से उठ पाए। दोपहर को दूर-दूर तक डोडी पिटवाई गई कि कल रात्रि एक भव्य समारोह होगा जिसमे मुख्य अतिथि देश के जाने-माने विद्वान् प्रो० कुणाल होगे। उनके सम्मान मे एक नाटक भी खेला जाएगा। कवि-सम्मेलन और मुशायरा भी होगा।

यह सूचना शुद्धप्रिया ने सुनी तो मानो खुशी से पागल हो उठी। वह शीघ्रातिशीघ्र प्रो० कुणाल तक पहुँचना चाहती थी। उससे कहा गया कि थोडा धैर्य रखे। वे कपाडिया साहब के यहाँ ठहरे है। भोजन करने के बाद प्रो० साहब स्वय उससे आकर मिलनेवाले हैं।

शुद्धप्रिया उद्विग्न हो उठी। तेज आवाज मे जैसे चीख पडी—"वह तो गुरु हैं। मै पहले जाकर उन्हे प्रणाम करूँगी।"

वह उसी हाल मे अस्त-व्यस्त कपडे पहने सबको धकेलती हुई, वहाँ से भाग छूटी और सीधे कपाडिया साहब के घर जा पहुँची।

प्रो० कुणाल सुकीर्ति के साथ अन्दर के हॉल मे बैठे अखबार पढ रहे थे। बिना पूर्व-सूचना के अकस्मात् धडधडाते कदमो की आवाज से वे चौंक उठे। सिर उठाकर देखा तो एक बार अदर तक थर्रा गए। अति भयानक रूप-काया कमरे के बीचोबीच खडी थी। ऊपर का होठ बुरी तरह से कटा हुआ, नीचे का लुढककर ठोडी को पकडता हुआ-सा। इसी प्रकार माथे पर कई खरोचो के निशान। मुसकराई तो आकृति अधिक भयावह हो उठी। वह आगे बढकर प्रो० साहब के पाँव छू रही थी। प्रो० कुणाल ने बडी मुश्किल से अपने-आपको सँभाला और समझ गए—यह और कोई नही शुद्धप्रिया ही है। लेकिन सुकीर्ति तो इस कदर खौफजदा हुई कि चेहरे पर हवाइयाँ उडने लगी और मुँह से आवाज निकली तो बस चीख मार रही थी।

इतने मे लक्ष्मणसिह वही पीली-लाल पगडी पहने वहाँ आ पहुँचा। उसने हाथ जोडकर वहाँ मौजूद तमाम लोगो से माफी माँगी। उसके साथ एक और आदमी था। दोनो शुद्धप्रिया को घसीटते हुए ले-जाने लगे।

प्रो० कुणाल ने उन्हे रोका—"ऐसी खींचातानी बन्द कीजिए। इसे अभी यहीं रहने दीजिए।"

"नहीं-नहीं।" फिर से चीखने लगी सुकीर्ति—"इसे फौरन यहाँ से हटाइए, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगी।"

सुकीर्ति को कपाडिया साहब की धर्मपत्नी साथ के कमरे मे ले गई तो भी

वह शुद्धप्रिया की वहाँ उपस्थिति से काँप रही थी।

"शुक्र है प्रो० साहब, आप अभी जिन्दा हैं। अब मेरा यहाँ कोई कुछ नहीं बिगाड सकता।" शुद्धप्रिया की साँस ऊँची-नीची हो रही थी।

"चिन्ता मत करो। सब ठीक हो जाएगा।" प्रो० कुणाल उसकी पीठ थपथपाने लगे।

"आप नहीं जानते। यहाँ सब मेरे दुश्मन हैं। मैं कहीं आ-जा नहीं सकती।" शुद्धप्रिया घुटनो म सिर देकर सिसकने लगी।

लक्ष्मणसिंह प्रो० कुणाल को एक तरफ ले-जाकर बताने लगे—"मामूली-से सदमे या खुशी से इस पर पागलपन सवार हो जाता है। वैसे जब कभी यह बाहर निकलती है तो सभी विशेषकर बच्चे, या तो डरकर भागने लगते हैं या इसे चिढाते हैं। तभी बस इसे दुगुने वेग से दौरा पडता है। वरना तो ठीक रहती है यह।"

खैर, किसी प्रकार धीरे-धीरे समझा-बुझाकर प्रो० कुणाल शुद्धप्रिया को वापस घर भेजने मे सफल हुए कि वे स्वय उसके यहाँ आकर खूब-खूब बाते करेगे।

उसी दिन शाम को, और दूसरे दिन भी प्रो० कुणाल शुद्धप्रिया के पास उसके घर पर बहुत देर तक रहे। शुद्धप्रिया अतीत के स्मृति-रस मे डूबती-उतराती रही। उसने अपने प्रो० साहब के स्वागत मे कोई कमी नहीं आने दी। उसका व्यवहार पूर्णत सामान्य था। प्रो० कुणाल यह देखकर चकित रह गए कि इतने अतराल के बावजूद—अपने विषय से कटे रहने पर भी उसे सब-कुछ अच्छी तरह से याद था। यहाँ तक कि दर्शनशास्त्रियो के कोटेशन ज्यो के त्यो रटे हुए थे।

इधर इन दोनो मे विचार-विमश चल रहा था उधर सामने ही समारोह की तैयारियाँ चल रही थीं। पडाल को लाल-हरी झडियों और रग-बिरगे गुब्बारो से सजाया जा रहा था। कई तरह के उपकरण बीकानर से भी मँगाए गए थ जिन्हे सही जगह पर फिट किया जा रहा था। यह सारा दृश्य शुद्धप्रिया की खिडकी से बडे आराम से दिखाई दे रहा था।

शुद्धप्रिया पुलकित थी। बार-बार कह रही थी—"सर, आज मैं कितनी खुश हूँ कि बता नहीं सकती। लगता है दो दिनो के लिए ही सही मेरे जीवन की सार्थकता लौट आई है। आज एक जमाने के बाद मैं फिर से आपको सुनूँगी। हो सकता है मैं कुछ प्रश्न भी कर बैठूँ। यदि वे लोग आज्ञा देगे तो मैं भी मच से आपके स्वागत मे बोलूँगी।"

"अवश्य-अवश्य तुम जरूर बोलना। तुम्हे इस तरह मे तरोताजा देखकर तुम मेरी प्रसन्नता का अनुमान नहीं लगा सकतीं।"

तभी कपाडिया साहब वहाँ पर आए। उनके साथ कुछ देर के लिए रुके, फिर प्रो० कुणाल को अपने साथ लिवा ले गए।

सध्या से लाउडस्पीकरो का शोर और पडाल के आस-पास सरगर्मियाँ शुरू हो गई थीं। बच्चे, बूढे, जवान सभी उत्साह से भरे हुए थे। कहीं कोई कमी नज़र आती तो उसे तुरन्त ठीक करा देते। वहाँ पर हर चीज जैसे चमक मार रही थी।

अतत कार्यक्रम आरम्भ हुआ। मगलाचरण, सरस्वती-वदना हुई। मच पर प्रो० कुणाल के साथ बैठे थे कपाडिया साहब और साथ ही प्रदेश के चर्चित साहित्यकार श्री राममूर्ति। इन सब का अभिनन्दन हुआ। फोटो खींचे गए। विशिष्ट नागरिको ने इन्हे पुष्पमालाएँ पहनाईं।

प्रो० कुणाल ने अगली पक्ति मे सुकीर्ति तथा शुद्धप्रिया क बैठन की विशेष व्यवस्था कराई थी। उन्होने देखा—सुकीर्ति तो ठीक-ठाक बैठी है परन्तु दूसरी कुर्सी अभी तक खाली पडी हुई है। उन्होने सोचा—उसे देर नहीं करनी चाहिए थी शायद आती ही होगी।

बहुत छोटी बालिकाओ ने फूलमालाएँ लेकर एक नृत्य प्रस्तुत किया। तब तक भी शुद्धप्रिया नहीं पहुँची।

सयोजक अगली प्रस्तुति के विषय मे घोषणा कर रहा था। प्रो० कुणाल न कपाडिया साहब के कान की तरफ मुँह बढाया। कपाडिया साहब टाल गए, जैस कुछ समझ न हो।

एक युवक मच पर आया और प्रो० कुणाल के स्वागत मे एक कविता पढने लगा। प्रो० कुणाल ने उसे रोका और कहा—"ठहरो, पहले शुद्धप्रिया को आने दो।"

"वह नहीं आएगी।" भीड मे से थोडी तेज आवाज आई।

"हाँ-हाँ वह नहीं आएगी।" समर्थन मे कुछ आर स्वर भी उभरने लगे जैसे मिलकर नारे लगा रहे हो।

"उसके बिना यहाँ कोई कार्यक्रम नहीं होगा।" सबको प्रो० कुणाल की दबग आवाज सुनाई दी।

अब कपाडिया साहब ने धीरे से बडी शालीनता के साथ कहा—"क्या कहते हैं सर! उसके यहाँ आने पर बहुत-से लोग चले जाएँगे। और तो छोडिए, अपनी इस प्रिय शिष्या स पूछ देखिए।" उन्होने सुकीर्ति की ओर इगित किया।

सुकीर्ति थोडे फासले पर बैठी सब समझ रही थी। वह आहिस्ता-आहिस्ता आकर मच के साथ सटकर खडी हो गई—"उसे बुलाना है तो मुझे अपने घर वापस भिजवा दीजिए।"

"यह तो होगा ही।" न जाने कौन बोल उठा।

प्रो० कुणाल ने सबकी ओर देखते हुए कहा—"कुछ नहीं होगा। मैं सब सँभाल लूँगा। मुझ पर विश्वास रखिए और शुद्धप्रिया को आने दीजिए।"

कुछ समय के लिए सवत्र मौन छा गया। परन्तु उसी मौन को रौंदती हुई चीखा ने सबको दहला दिया—"मुझको छोडो छोडो मुझे! मुझे जाना है। मैं रुकूँगी नहीं।"

स्पष्ट था पडाल के निकट लक्ष्मणसिंह की खुली खिडकी से बार-बार आने वाली ये बुलद आवाज शुद्धप्रिया की थीं।

"उसे आने दीजिए प्लीज!" प्रो० कुणाल ने साग्रह दोहराया।

"मेरी बच्ची पागल नहीं है।" लक्ष्मणसिंह बोला—"आपके डराने या चिढाने से ही वह उन्मत्त हो उठती है।"

एक बुजुर्ग ने ऊँची आवाज मे सबका ध्यान आकर्षित करना चाहा—"हाँ लक्ष्मण भाई सच कहते हैं।"

मगर भीड ने उसकी आवाज छिन्न-भिन्न कर दी।

प्रो० कुणाल अपनी कुर्सी से उठ खडे हुए।

आयोजक जोर-जोर से बोल रहा था—"बस आप भाई लोग थोडा शात बने रहे। शायद प्रो० साहब आपसे कुछ कहना चाहते हैं।"

प्रो० कुणाल शोर के बीच कह रहे थे—"मैं शुद्धप्रिया से मिल चुका हूँ। मेरी बात तो सुनिए। यदि आप सब ने उसे सहज रूप मे लिया होता तो सभी अभ्यस्त हो चुके होते। अब भी कोई समस्या नहीं है। उसे अवसर तो दीजिए। कोशिश कीजिए। मेरी विनती है। मैं सब सँभाल लूँगा। मुझ पर विश्वास कीजिए।"

सामने भीड थी। उठता-बैठता शोर था। उन्हे अनुकूल प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा थी।

तभी पूरी फिजा मे भयकर रूप से 'कड कड' 'पड पड' होने लगी। कमरे मे बन्द शुद्धप्रिया दरवाजो-खिडकियो पर प्रहार कर रही थी सामान बिखेर रही थी जैसे अब सब-कुछ तहस-नहस होनेवाला है।

लक्ष्मणसिंह ने आगे बढकर हाथ जोडते हुए कहा—"मुझे खेद है। आप अपना कार्यक्रम जारी रखे। मैं जाकर उसे सँभालता हूँ।"

साथ खडा हुआ कोई दर्शक बुदबुदाया—"एक के लिए सब क्या भुक्ते।"

साहित्यकार राममूर्ति कब से बैठे अपने होठ चबा रहे थे, बेबस किसी तरह अपने-आपको चुप रखे हुए। अब इतना सुनते ही उन्होने अपना ज्ञानकोष खोल डाला—"यस येस आफ्टर ऑल लार्जर इन्ट्रेस्ट Laissez faire अकेला रहने दो।

"नहीं।" गरज उठे प्रो० कुणाल—"उसे फौरन यहाँ ले आइए।"

"नहीं-नहीं।" भीड़-तन्त्र अपनी जगह कायम था।

प्रो० कुणाल तीन कदम आगे बढे। सामने रखे पेट्रोमेक्स पर लात से भरपूर ठोकर मारी। एक हाथ से शामियाने की रस्सी को इस बुरी तरह से खींचा कि वह बाँसो के साथ चरमराकर धराशायी हो गया। अधकार के बीच प्रो० कुणाल का दमकता हुआ स्वर सुनाई दिया—"अब यहाँ मेरी ओर से कोई कार्यक्रम नहीं होगा।"

कोलाहल थुथ और भगदड़।

दूसरे दिन सुबह लक्ष्मणसिंह सुकीर्ति को उठा रहे थे—"बस का समय होनेवाला है। नाश्ता तैयार है। उठो बेटी तैयार हो जाओ।"

"ऐ।" कहती हुई सुकीर्ति उठकर बैठ गई और आँखे मलने लगी। उसकी समझ मे कुछ नहीं आ रहा था। वह लक्ष्मणसिंह की तरफ देखने लगी।

लक्ष्मणसिंह कह रहे थे—"तुम्हारे सर तो रात को ही मुबई चले गए। वहाँ वे शुद्धप्रिया की प्लास्टिक सर्जरी कराएँगे। वह मुझ तुम्हे तुम्हारे घर तक पहुँचाने का आदेश दे गए हैं। माफ करना बेटी।"

●

हारते हुए

"तो रही शर्त ?"

"हाँ, हाँ, लगा ले।"

"कितने-कितने की ?"

"शर्त तू ही लगा रहा है। तू ही बोल।"

दो किशोर चायघर मे बैठे-बैठे जाने किस बात पर तैश म आ गए थे और शर्त शर्त चिल्लाने लगे थ।

चन्द्रकिशोर का चेहरा यकायक खौफजदा हो गया।

मेरे प्याले मे अभी थोडी चाय बाकी थी। मैने चन्द्रकिशोर का कधा थपथपाया तो वह उठ खडा हुआ।

हम दानों कपनी बाग की तरफ चल दिए। वहाँ आकर एक ठेलेवाले से फिर चाय पी। मैं वहीं हरी दूब पर बैठ गया परन्तु चन्द्रकिशोर नहीं रुका। शायद यह जगह उसके लिए चायघर स भी भारी पड गई थी। स्मृतियाँ जब मनुष्य को कुरेदती हैं ता वह बेहाल हो उठता है।

याद नही बात किस मौसम की है। दिन सर्दिया के थे या गर्मिया के।

बात का तअल्लुक मौसम सर्दी या गर्मी से नहीं होता। बात का तअल्लुक जवान

से होता है। जबान' आदमी की जबान। जबान की कीमत होती है और शर्त की ? नहीं। शत की कीमत नहीं हाती।

वैसे साचता हूँ। याद करता हूँ।

बात लगभग दो साल पहल की है। हाँ दो साल तो गुजर ही चुके हाग। आफ्, बात-बात पर झगडा 'पर साचता हूँ, यही झगडे ता पुख्ता सबूत थे हमारी दास्ती के, और ले-देकर यही दास्ताँ है हमारी दोस्ती की। यही माटे-माटे हाठावाला चन्द्रकिशोर 'ज्यादातर यही मैदान-ए-जग का हीरो होता। जैसे हर किसी को ललकारता रहता। इसके बार-बार जलने-भुनने से हम सब खूब मजे लेते।

ता आज किसकी बारी है ? इशारे होते रहते।

बस मासम की बात यूँ कर दी कि मौसम क मुताबिक ही हमारा समय निश्चित हाता रहता था। उसी निश्चित समय पर हम सभी दास्त शाम का मिला करते थ। कपनी बाग की इस दूब से बढकर हमार लिए, दूसरी जगह नही थी।

अपनी थोडी कुबडी चाल से उस दिन चन्द्रकिशार ललित की तरफ बढ गया—शर्त-शर्त। बरौनक चेहरे पर रखे मोटे-माटे हाठ फडफडा रहे थे।

लगभग सभी मौजूद थे—मैं शौकत, प्रेमनाथ केदारदास।

उलझने का कारण प्रीति थी—ललित की नई-नवेली रूपवती दुल्हन जिसक खयाला में वह रात-दिन खोया रहता था।

हम लाग आपस म फुसफुसात थे—यह साला सिफ अपने का 'दिखान' हो हमारे बीच आ पहुँचता है। वरना यारा का छाडकर 'उसी की' गादी म पडा रहे।

वैसे तो हर कोई हर एक से रस्सा-कशी का तैयार रहता था पर ललित से उलझना प्राय सबका अनायास हो उठता। कारण ललित बाकायदा अपना ही सुर निकालता था। वह सुर जब बाकिया से ज्यादा जुदा हाने लगता ता दूसरे 'आए आए' करते, झपटते, उलझत। ललित बस हल्के-हल्के मुसकराता रहता बदमाश।

शरारती, भोला-घमडी अलग पहचान बनान का सनक पालनेवाला। कुल मिलाकर यही था ललित हमारी निगाहा मे।

यह सब तभी से चला आ रहा था जब हम पढते थे और कुँआरे थे। हम सबका शौक ज्ञानार्जन था। दिक्कत तब होती जब यह ज्ञान का शौक हर किस्म की हदे फाँदने लगता। हर कोई हर सब्जेक्ट्स मे ज्यादा से ज्यादा टाँग अडाने में विश्वास रखन लगा था। अपन इसी नॉलेज के बलबूते पर एक दूसरे का पछाडने पर आमादा। हालाँकि यह बीमारी ललित मे कुछ कम थी फिर भी वह अदर ही

अदर अपने को किसी से कम भी नहीं समझता था। यदा-कदा दो टूक बात कहता ता सबको लगता हमे पछाडकर गिरा रहा है साला।

पढाई के साथ-साथ हम लोग लिखाई भी करने लगे थे। लिखाई से मुराद कविता-कहानी से है। जिसकी जो भी चीज छपती, वह डींग मारो से बाज न आता और बाकी सब उसे गाली देने से बाज न आते। सबमे जलन उठती जिसे उस दिन का लेखक कवि चाय से ठडा करता। साथ ही वह भाषण भी देता रहता 'इस रचना से कुछ सीखो! यह भावी पीढियो के लिए एक लाजवाब और मार्गदर्शक चीज है।'

चाय और भाषण पी चुकने के बावजूद तीन-चार किस्म के इल्जामात 'उस दिन के लेखक' पर लादने की कोशिश जारी रहती कि इस रचना को सपादक ने गलती से या नासमझी से या फिर दया करके या फिर डरके छाप दिया है। (लोकल अखबार के छोकरे या बूढ सपादको को हम लोग धमका भी आते थे।)

मगर ललित को आखिरी इल्जाम से हमेशा बरी रखा जाता—यह कमसिन किसी को क्या डराएगा! हाँ इसकी सूरत पर लट्टू होकर, कोई कुछ भी कर सकता है।

—कमेट्स कमेटस

सभी तालियाँ बजाने लगते।

ललित थाडा शरमाकर मुसकराने लगता।

शरीर और तबीयत से नाजुक, एकदम गोरा-चिट्टा रग, साफ-सुथरे सलीके से कपडे पहननेवाला निहायत स्वाभिमानी युवक—यही ललित था।

वक्त के सरकत पाँव।

पढाई खत्म।

फिर नौकरी।

एक के बाद दूसरा अपने पाँव गृहस्थी के प्रागण में थिरकान लगा।

रह गया ललित।

आपम मे हर तरह के मजाक पहले भी हुआ करते थे। अब कुछ और तरह के हो चले यानी थ्यारिटिकल से प्रैक्टिकल। बडी बेहयाई से कुरेद-कुरेदकर एक दूसर से 'अनुभव' पूछते और खिड-खिड हँसते।

ललित सरककर दूर जाने लगता तो पकड लेते—"फिर तू साले बुजुर्गों मे आकर बैठता ही क्या है? इसके लिए भी कोई दूध का इतजाम करो भाई!"

फिस्स फिस्स

अपने-आपको पूरा मॉडर्न दिखाने के लिए हम लाग अपनी बीविया का भी

अक्सर अपनी महफिले गर्माने के लिए ला बेठाते।

"देखते नहीं, भाभिया की टालिया मे केसा रमता हे। किसी भाभी को आब्लाइज करने के लिए उसे पानी पिला रहा है। किसी भाभी का प्यारा बनने के लिए उसकी तश्तरियाँ उठा धुलवा रहा हे।"

"हाँ, पूरा रसिक। बनने को वडा शरीफ फर्माँबरदार बनता है। वक्त निकालने को इतनी सारी हैं भाभियाँ। इसको किसका डर! हम बदला ले ता किससे? इसकी कोई हो तो ।"

"इसका बदाबस्त हम कर दगी।" राधिका भाभी के पतल गल स निकला मीठा स्वर कितन ही क्षणा तक, हरी-भरी घास का आर हरा-भरा करता रहा।

ऐसे मधुर स्वर का प्रभाव कम न हा, चन्द्रकिशार के माटे हाेठा न पिचकारी छोडी—"बिल्कुल राधिका भाभी जेसी हो। आपसे ही चिपका रहता ह, इसीलिए।"

"ठीक अपनी ही तरह की ले आऊँगी। यह कौन-सा कम सुन्दर है।"

बात आई-गई नहीं हुई। सचमुच राधिका भाभी जी-जान से जुट गईं। छह महीने गुजरते न गुजरते, प्रीति को ले आईं। ललित को दिखाया तो उसकी नजर फिसल-फिसल गइ। भाभी ने पूछा तो बोला—"मुझे कुछ पता नही। आप जाने।"

सभी जान गए और फैसला हो गया।

बस कुछ अर्से के बाद ही ललित को भी दोस्ता की बराबरी का रुतबा हासिल हा गया। वह सब मे खुलने की कोशिश जरूर करता पर फक्कड शब्दावली का प्रयाग न कर पाता। दोस्त कुरेदते तो वह धीरे-धीरे प्रीति के रूप-गुणो की महक से जैसे लबरेज हो उठता। उसकी प्रशसा मे जैसे कविता करने लगता।

एक दिन केदारदास बोला—"वैसे दोस्त तो दोस्त होते हैं पर दोस्त हर तरह के होते हैं। इसलिए ऐसे नाजुक मसला को सब के सामने उघेडा नहीं जाता।"

ललित बोला—"आखिर दोस्त ही ता राजदान होते हैं। दास्ता स कैसा पर्दा।"

"मान गए नन्हे मियाँ तुम्हारी रूप की रानी का।" शौकत ने अँगडाई लेते हुए कहा।

पेमनाथ बोला—"ललित छोडा इन्हें यह वताओ तुम क्या-क्या करते हा उसके लिए?"

ललित जवाब मे मुँह खालने ही वाला था कि न जाने क्या चन्द्रकिशार इस

प्रेम-प्रसग से खीज उठा—"यह क्या बताएगा मैं बताता हूँ। ये प्यार-प्रेम के किस्से रहने दो। लगा लो मेरे साथ शर्त।"

"शर्त ?" ललित असमजस मे पड गया—"आखिर यहाँ शर्त की क्या बात है भाई ?"

"है शर्त की बात। शर्त की बात तो है ही।" कुछ-कुछ ईर्ष्या-युक्त स्वर था चन्द्रकिशोर का। इतना कहा और चुप हो गया। लेकिन तब भी उसके मोटे-मोटे होठ काँप रहे थे।

किसी ने कुछ नही कहा। चारो ओर मौन छा गया।

फिर से चन्द्रकिशोर ही बोला—"शर्त इसी बात की " वह जरा रुका ओर फिर से वाक्य घसीटता हुआ आगे ले गया—"शर्त इसी बात की कि तमाम लोग सकट की घडी म अपनी बीवी को छोडकर भाग खडे होते हैं इसे तो हम शुरू से ही जानते हैं। इसकी तो औकात ही क्या ? हाँ ललित सिर्फ तुम्हारी नजाकत पर ही फिदा हुआ जा सकता है बस।"

"छोडो यार व्यक्तिगत आक्षेप लगाने की क्या जरूरत है।" मैं बोला था। मैं ऐसे मौको पर जरूर बोलता था। इससे मेरा नाम सबने *बीच-बचाव मास्टर* रख छोडा था।

"तुम चुप रहो जी बीच-बचाव मास्टर। इनको निपटने दो।" प्रेमनाथ ने टाँग अडाई।

"माना मेरे समेत सभी दब्बू हैं, पर फैसला कैसे हो ?" छाती के मामूली उठाव के बावजूद ललित का स्वर सयत था।

अब तक चन्द्रकिशोर का स्वर भी शान्त—"कौन-सी जल्दी है बरखुर्दार। धैर्य रखो और थोडी प्रतीक्षा करो। युद्ध के आसार चल रहे हैं। गुडे भाई भी आए दिन तुम शरीफों के घरो पर छापे मारते ही रहते हैं। मैं तो दो टूक बात करनेवालो म से हूँ। रही एक-एक हजार की।"

ललित ने झट हथेली आगे दी—"मजूर है शर्त।"

वक्त के पाँव और सरके

शौकत और ललित को हमने विदाइ-पार्टी दी।

दोनो एक ही दफ्तर मे काम करते थे। दोनो ही का स्थानान्तरण दौलतापुरा म हो गया।

घर-बार, अपना शहर सगी-साथी भाभियो के साथ छूटने की तकलीफ को ललित ने तकलीफ न कहकर अपनी खुशनसीबी कहा—"चलो, एक भाई और

भाभी का तो साथ ले-जा रहा हूँ। कभी लौटेंगे तो इकट्ठे ही। एक-एक करके नहीं।''

''बाहर भैंसा बनकर रहना।'' चन्द्रकिशोर भरे गले से कह रहा था।

''फिक्र मत करो। मुझे तुम्हारी शर्त याद है।''

''अब बक-बक मत कर। लगाऊँगा झापड। जरूरत पडे तो तार दे देना। सभी यमदूत हाजिर हो जाएँगे।''

अपना और शौकत का कुछ बकाया सामान लेने ललित आया था। सबमे बैठा सुख-दु ख बाँट रहा था—''भाइ साहब दौलतापुरा जगह ही ऐसी है जहाँ सँभल-सँभलकर पग रखने की जरूरत है। हमे किराए पर दो मकान चाहिए थे या एक बडे मकान मे हम दोनो एक-साथ रह लेते। मगर मुहल्ले पूरी तरह जुदा-जुदा बँटे हुए हैं। मुझे हिन्दू मुहल्ले मे ही मकान मिल सकता था और शौकत को मुस्लिम बस्ती म। 'इसी मे हम दोनो की सेफ्टी है'—स्थानीय लोग यही समझाते हैं। आखिरकार हमे इस मायने मे सफलता मिली कि हम दोनो के मुहल्ले एक-दूसरे के बहुत करीब हैं। जैसा कि कुछ पुराने पोखर-बावडियो के बारे म बताया जाता है कि वह हर साल एक-दो की बलि लेकर ही मानती है उसी तरह ही समझो। दौलतापुरा का काला पहलू यही बताया जाता है कि साल म एक-दो बार दगा हो जाता है। दो-चार को लील जाता है।''

''आखिर क्या होगा इस देश का ?'' कदारदास जसे ललित और शौकत को ही पूरे देश की सज्ञा दे रहा था—''ऐसी जगह कौन रह सकता है ?''

''हमे तो नौकरी करनी है, भाइ साहब।''

''लात मार आओ ऐसी नोकरी को। यार लोग अभी जिन्दा हैं।'' चन्द्रकिशोर झट से बोल पडा।

''क्या करेगे यार लोग ?'' मैंने उसकी ओर देखा।

''तू चुप रहा कर बीच-बचाव मास्टर। हम सभी मिलकर कोइ बिजनस कर लेगे।'' चन्द्रकिशोर ने सबकी ओर देखा।

चारो ओर से 'हाँ-हाँ' हो उठी। एक ने कहा—''सब-कुछ बदमजा हो गया, इन उल्लुओ क बगैर तो बनाओ प्लान।''

वक्त ने अपने पैर और फैलाए

ललित का छेडने से जो रौनक बनी रहती थी वह नहीं रही। उपर से शौकत की कमी। फिर घर-गृहस्थी के जजाल भी बढ चले थे। पहले की तरह

बाग म पहुँचना नियमित नहीं रहा था।

इन दिना शौकत अपने अब्बू की बीमारी की वजह से यहाँ आया हुआ था। वे आज कुछ सँभल थे। लिहाजा हम अपने पुराने मूड म आकर उसी घास पर हुल्लड मचा रहे थे। तभी एक लडका भागा-भागा आया। घबराए हुए स्वर म शौकत स बाला—"भैया घर चलो। तुम्हार नए शहर म दगा हा गया है। भाभी किसी तरह आइ हैं। जार-जार से रो रही हैं।"

"आर ललित?" शौकत ने चिंतित स्वर म पूछा।

"वह दग वाली रात घर से निकले थे। उनका पता नहीं। भाभी रोए जा रहा है। ठीक से सुनाई नहीं देता। भीड है वहाँ।"

चन्द्रकिशोर का भारी-भरकम आकार जैसे हिल गया। हाठ काँपे। जोर लगाकर बाला—"देखा सबने? मैं शत जीत गया अब इसम मैं क्या कर सकता हूँ।"

हम सभा भागत हुए शौकत क घर पहुँचे।

बहू के जिस्म की खरांचे देखकर अब्बू बेहाश हा गए थे। हम डॉक्टर को बुलाने चले गए। दूसरे रोज शौकत ने सारा माजरा कह सुनाया। हुजूम का हुजूम भूखे भेडियो की तरह उनके घर पर टूट पडा था। आग के शाला और पत्थरो का खेल चल रहा था। चीखा से बस्ती दहल रही थी। उसकी बीवी को घसीटा जा रहा था। उसके ऊपर छीना-झपटी चल रही थी। अर्धमूर्च्छित अवस्था मे उसे कोइ परिचित-सा दहाडता हुआ स्वर सुनाई दिया—"छोड दो इसे हमारे लिए। एक हम भा ता चाहिए।" उसे कधे पर लादकर वह बिजली की फुर्ती से बाहर निकल भागा।

"हिन्दू हा तो ले जाव।" बेबस-सा स्वर धुध को पार करता हुआ सुनाई दिया।

दूर सडक के किनारे उसे ला खडा किया—"घबराआ नहीं भाभी। मैं ललित हूँ, तुम्हारा देवर।"

तब तक वह सँभल गई थी। एक बस को रोका। उसमें बैठ। बाद मे पिछला सीट पर दत्ता आटी को देखा। दत्ता अकल भी साथ थे। उसे उनक हवाले कर ललित मोटर से उतर गया।

चौथे रोज जब शौकत दौलतापुरा के लिए चलन लगा ता चन्द्रकिशार भी साथ तैयार हो गया। कहने लगा—"मैं भी तो देखूँ, तुम्हारा दौलतापुरा। मुझे तो उस छाकर स रुपए वसूल करन हैं।"

दसव दिन चन्द्रकिशोर वापस आ गया। ललित का काई पता-ठिकाना नहीं

था और न ही उसकी पत्नी प्रीति का। मकान-मालकिन बतलाती है—"हमने उसे बहुतेरा रोका। प्रीति का वास्ता दिया तो कहने लगा—'इतना बड़ा हिन्दुओं का मुहल्ला है। फिर यहाँ आप सब तो हैं। पर मेरी भाभी अकेली है।' इतना कहते हुए ललित भाग खड़ा हुआ था। उसके जाने के बाद हमारे ही मुहल्ले पर भयंकर हमला हुआ जैसे सब-कुछ तहस-नहस हो गया। सभी अपनी-अपनी राह में दुबक गए। तब से हमारी बहू और प्रीति का कुछ पता नहीं। दूसरी सुबह ललित आया था। फिर प्रीति को ढूँढने वापस निकल गया था। फिर नहीं लौटा। आग अभी ठंडी कहाँ हुई थी।"

वक्त कुबड़ा हो गया है।

समय-समय पर शौकत के खत आते रहते हैं। वह उसे ढूँढ रहा है।

पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करा दी है। पुलिस ने उसे कुछ चित्र दिखाए हैं। उनमें ललित का चेहरा नहीं है।

इसलिए ललित जिंदा है।

ललित जैसे लोग कभी नहीं मरते।

चन्द्रकिशोर जब-तब विक्षिप्त-सी हँसी हँसता है—"ललित जिन्दा है, पर मिल नहीं रहा। सामने आने से कतरा रहा है साला। पैसे जो देने पड़ेंगे।" कभी कहता है—"देखो तुम सब दोस्त उसी की तरफ हो जाना। कहना—नहीं-नहीं चन्द्रकिशोर ही हारा है। ललित तुमने चन्द्रकिशोर को ही नहीं, हम सबको पछाड़ दिया है। फिर देखना वह पिद्दी कैसे मुसकराता है।"

शौकत के खत आते रहते हैं। वह उसे अब भी ढूँढ रहा है। वह उसे जरूर ढूँढ लेगा। उसका स्थानान्तरण वापस यहीं का हो गया है। सूची में ललित का भी नाम है। मैंने आदेश स्थगित करा रखे हैं। हमारा वायदा इकट्ठे साथ लौटने का था। मैं अकेला कैसे आ सकता हूँ! जब तक वह नहीं मिलता मैं नहीं आऊँगा।

शौकत, ललित को ढूँढ रहा है।

और इधर हम सब प्रतीक्षारत हैं। अनवरत प्रतीक्षा।

किसी दिन हम देखेंगे—

शौकत और ललित साथ-साथ लौट रहे हैं—एक दूसरे का हाथ थामे।

●

सरहद पर सुलह

आध गज आध इच।

चार-छह क्या, बीसिया बार नापा। पर वही का वही—ठीक आध गज आध इच।

जमीन का इतना-भर टुकडा।

चख-चख।

कुलदेवता।

इन्हीं पर पहले विवाद, फिर दुश्मनी।

पैमाइश अपनी जगह कायम।

जीतसिंह और फतेहसिंह अपनी-अपनी जगह जमे हुए।

सगे भाई।

भाइया जैसा पुख्ता प्यार।

मगर हिसाब तो हिसाब ठहरा।

बपौती हिसाब।

बाप मर गया।

जायदाद का बँटवारा।

सब-कुछ सहज बँटता गया।

बडे आँगन के पिछवाडे दो बडे कमरे। दोना तरफ दा-दा छोटे कमरे। फिर रसोई नहानघर, शौचालय बैठक भी बराबर-बराबर।

कोई झझट नहीं।

अब आँगन के ठीक बीच दीवार खडी कर, अपनी-अपनी तरफ कुछ और निर्माण करने की सूझी।

बस अड गया—आध गज आध इच। आँगन के ठीक बीचाबीच बना शिवजी का चबूतरा। कमर-भर ऊँचाई। लबाई मे कुछ अधिक, चौडाई वही आध गज आध इच।

मूर्ति के दोनो आर छोर पर तुलसी क पौधे।

दोनो आस्था के पुष्प चढाने लगे।

"मेरी तरफ रहेगा।"

"मेरी तरफ रहेगा।"

"मेरी तरफ "

"तो लात मारता हूँ, पिद्दी-भर जमीन पर।"

"मैं मूतता हूँ। मेरे तो मूतने के काम भी नहीं आएगी।"

लेकिन छोडने का नहीं कोई।

इत्ती-भर जगह मैदान-ए-जग हा गइ।

दोना भाई जीतसिंह वर्सेस (बनाम) फतहसिंह हा गए। पार्टी बन गए।

बहुएँ सिसकतीं।

सासे डपटतीं।

अडोसी-पडोसी हँसते।

अधिकारो और प्रतिष्ठा की लडाई—कौन झुकता है?

"क्यूँ झुकूँ ?"

"क्यूँ झुकूँ ?"

"तू अपने खसम को समझा।"

"तू अपने खसम को समझा।"

देवरानी-जठानी एक-दूसरी का कोसतीं आँसू बहातीं, बहुआ का कासती। झगडत हुए आदमियो का कासतीं अपन-आपका कासतीं मरे हुए ससुर को कोसतीं कुलदेवता को कोसतीं।

कुलदेवता हर समय आँगन के बीचोबीच आध गज आध इच चबूतरे पर विराजमान बडे निरपेक्ष भाव से मुसकरा रहे होते।

चखाचख को चखते दिन महीना में बदलने लगे।

पुलिस, थाने कचहरी तक पहुँचने का लामबद हो गए दोनों लबे कद के बूढ, फौजी जवान अपनी पुरानी वर्दिया म लैस होकर।

मुहल्ले की इज्जत का सवाल पैदा हो गया।

तमाशबीना से लेकर, दानिशमदा की जमाअत आ गइ।

सभी समाधान ढूँढने समझाने और भले के लिए धमकाने म एक दूसर से आग।

औरत दरवाजा के पल्ला की आट लिये चुपचाप फैसला सुनने को आतुर।

सभी की हमदर्दी, दानो ही के साथ रगने लगी।

साइस के नौजवान प्रोफेसर शौकत अली ने आग लगा दी। जमीन हमवार करने की सलाह दे दी। नौ-नौ इच चार-चार सूत याँट खाने की ताकीद कर दी। दाना भाइया से मुहब्बत यनाए रखन की गुजारिश कर दी।

प्राफेसर भरी बारादरी म वहशी हो गया।

ललकारने लगीं चहुत-सी आवाजा—सभी का अपना धर्म प्यारा होता है। कौन ताडता है अपने धर्म-प्रतीको को ?

आम मसरूफ सडका और रास्ता पर यनी मजारे या समाधियाँ अमूमन मौत का बाइस यन जाती हैं। हट जाएँ तो खलकत सुखी खुदा राजी।

सब्जी का गाडा लगानेवाला शेरू खाँ उयल पडा, "आए भाग जा मास्टर! पूरे शहर म मजहवी दगे हो जाएँगे। जा-जा नहीं ता मैं मालवी से कहकर फतवा जारी करवाता हूँ।"

प्राफसर साहव के खिलाफ माहौल गरमाया ता दाना भाई एक हा गए, मुकाबला करने को।

"कैसे तोड दूँ अपने आराध्य देवता का चौरा ?"

"यह चौरा हमारी आत्माओ, भावनाआ स जुडा हे।"

प्रोफेसर साहब ने माथा पकड लिया। कान पकडते हुए, जुनून से अलग हा गए।

प्रोफेसर अली के *अलग* होते ही फिर से दोनो भाई भी *अलग-अलग* हा गए।

भिड गए याद्धाआ की तरह।

"तू आधे के पैसे ले ले और दफा हो।"

"तू आध/के पैसे ले ले और फुट जा।"

"ता फिर वक्त आने दो। चुटकियाँ बजाते ही वैस ही पूरा कब्जा करक दिखाऊँगा।"

"तू या मैं ?"

"म जीतसिंह हूँ।"

"तो मैं फतहसिंह हूँ।"

"ता सडने दे।"

"गलने दे। बलने दे।"

जीतसिंह की घरवाली उस अपनी तरफ खींच ले गइ।

फतेहसिंह की घरवाली अपन आदमी को समझाने लगी।

लोग-बाग चले गए।

चद रोज की चुप्पी। मगर अदर ही अदर खिच-खिच।

फिर से शुरू हो गया चखचख-सवाद। महीना चला।

मुहल्ले के सेवानिवृत्त मजिस्ट्रेट, वकील एस० आई० ने बीच-बचाव किया। आध गज आध इच जगह छोडकर, दोनो तरफ दो दीवारे खडी करवा दी। विचित्र-सा अस्थायी समाधान। आध गज आध इच की लबी खोखली पट्टी बीच म बन गइ—जगबदी-लाइन, सुरक्षित क्षत्र। यानी दोना ही परिवारो के लिए वर्जित क्षत्र। बीच म शिवजी का चौरा दाना की तरफ स दिखता रहता।

बाद मे कभी-कभी वे सोचते भी—अच्छे लोगा ने अच्छा बेवकूफ बनाया। दा दीवारा की क्या जरूरत थी? एक से भी तो काम चल सकता था। खर अय अड गए सो अड गए। साझी दीवार कैसे बनती?

अच्छे दिना की आस म निमाण-कार्य स्थगित।

बाल-चाल बद।

एक दूसरे की तरफ दखना-झाँकना बद।

हाल-चाल कौन पूछे?

पर बहुएँ ता सगी बहने थीं।

बडी बहन वदना जीतसिंह के लडके शोभासिंह से ब्याह कर आई थी। याद म अच्छा घर समझकर, माँ-बाप ने छोटी लडकी चदना जा अभी मुश्किल स अठारह साल की ही हुइ थी, की शादी फतेहसिंह के लडके शयामसिंह से कर दी। चदना खुश थी। माँ-बाप-भाइया की जुदाई हुई पर दीदी तो मिल गई। हर वक्त *दीदी-दीदी* करती बच्चा की तरह फुदकती हुइ दीदी की बगल म जुड जाती।

वदना भी खुश। गुडिया बहन के बाला का सहलाती उसस खलती रहती। उसके लिए ता जैसे अपना घर, अपना बचपन लौट आया।

सब-कुछ ता ठीक चल रहा था।

पर बीच मे आ गया था, आध गज आध इच।

शाभासिंह नक लडका था।

शयामसिंह भी शरीफ।

कुछ लोग तो उन्हे सगा भाई ही समझते थे। ज्यादा शराफत की वजह से कुछ लोग उन्हे *मट्टी के माधो* भी कह देते थे।

मगर इससे क्या ?

वदना-चदना के माँ-बाप ने सोचा—ऐसे लोग किसी को तग नहीं करते। पिछली लडकी सुखी है दूसरी भी सुखी रहेगी। दोनो ही लडके वालदेन के निहायत फरमाँबरदार हैं। आजकल के ज़माने मे यह एक दुर्लभ गुण है।

अब इसी फरमाँबरदारी के तहत बापो की हिमायत मे आपस मे बोलचाल बन्द हो गई। दोनो ने बीवियो के भी आपस मे मिलने पर पाबदी आइद कर दी।

दोनो सिसकतीं।

सिसकती रह।

आखिर घर की इज्जत का सवाल है।

बहुएँ घर की इज्जत होती हैं।

चदना मैके आती।

उन दिनो वदना को नहीं जाने दिया जाता।

वदना मैके जाती।

उन दिनो चदना को नहीं जाने दिया जाता।

चाचाजी वदना के घर आए—यहीं बुला लो चदना को। एक ही समय में दोनो भतीजियो से मिल ले।

नहीं जाने दिया चदना को।

मामाजी चदना के घर आए। नहीं आने दिया वदना को वहाँ।

फिर लुका-छिपी का खेल शुरू हो गया।

दोनो बहने कभी मुख्य द्वार पर गुपचुप करतीं तो कभी शिवजी के चबूतरे मे रुआँसी शक्ल मे एक दूसरी को देखकर मुसकरा-भर देतीं।

अक्सर पकडी जातीं, शामत आ जाती।

—तुम्हारी यह हिम्मत!

—तुम्हारी यह जुर्रत!

—वैरियो से मेल-जोल!

—पर हम तो सगी बहन हैं!

—इस घर मे रहना है तो घर के हिसाब से ही चलना होगा। वरना

फिर दोनो बहनें प्रेमी-प्रेमिकाओवाले रिवाज की तरह एक दूसरी की तरफ कागज के पुर्जे गिराने लगीं।

दिन सर्दियो के
अमावस की रात। जबर्दस्त पाला पडा था।

सब लोग अपने-अपने कमरो को जहाँ-तहाँ स पूरी तरह बद किए हुए, भारी रजाइयो में दुबके सुबह तक पडे रहे थे।

सबसे पहले जीतसिंह अपने कमरे से बाहर आया। स्लीपरो के तले कुछ चुभने का आभास हुआ। आँखो से कुछ कम दिखलाई देता था। धुँधलके मे झुक-झुककर देखा। इधर-उधर ककर बिखरे हुए दिखे। फिर दीवार के निकट मलवे का ढेर।

''सत्यानाश! हाय यह क्या हो गया, मेरे रब्बा ?'' आवाज खासी ऊँची थी। विलापयुक्त।

दो मिनट बाद फतेहसिंह भी आँगन के उस छोर सामने आकर खडा हो गया, ''उजाड दिया? नहीं छोड़ूँगा तुझे जीते।''

''काली करतूत तेरी, पाप मेरे मत्थे ?''

''बनो नहीं उस्ताद।''

लडाकू स्वर। एक दूसरे से बुलद।

बहुओ को छोडकर, एक-एक कर सभी अपने-अपने कमरा से बाहर आकर जगबदी लाइन के सामने से झुक-झुककर मुड-मुडकर, एक दूसरे को ललकारने लगे। गालियाँ बकने लगे।

''पाप चढेगा।''

''उजड जाओगे।''

''देख लेना भगवान की लाठी में आवाज नहीं होती।''

शोर बढा तो मुहल्लेवाले भी आ इकट्ठे हुए गली मे।

''अजीब है। क्या माजरा हुआ ?''

''आप ही को पता होना चाहिए।''

''ऐसी ओछी हरकत। कोई बाहरवाला तो कर नहीं सकता।''

''तो घरवालो ने नरक में जाना है, पूजा-घर तोडकर।''

''पता तो आप लोगा को ही होना चाहिए।''

''हमे क्या पता? आधी रात बाद, थोडी खट-खट की आवाज आई थी, जैसे सपने में।''

''तो उठाया क्यो नहीं कजरिए ?'' जीतसिंह ने पत्नी का झाटा पकड लिया।

''हाए! सोचा, पता नहीं पडोसवाले रात को भी मकान का काम करा रहे

है। फिर कौन कहे इतनी ठड मे सच था या सपना।"

"इसे छाडो। अपनी बहुओ को बुलाओ।"

"हाँ वह क्यो नहीं आई? दाल मे कुछ काला है।"

शोभासिंह और शबाबसिंह दोना ही फुर्ती दिखाते चप्पला की छप-छप करते वदना और चदना को घसीट लाए।

"सच-सच बोल खातिए!"

"ऐ! क्या हुआ?" वदना आँखे मल रही थी।

"तू बोल सच-सच नहीं तो हड्डियाँ तोड दूँगा।"

"ऐ ऊँ क्या हुआ?" चदना दूसरी तरफ देखने लगी।

"तुम दोना अधी हो गई हो? नजर नहीं आता कुछ?" जीतसिंह गरजा।

"पूरे घरवाला की मिलीभगत है। मुहल्लेवालो को चरा रहे हैं। चला भाइयो।"

जीतसिंह और शोभासिंह एकाएक वदना पर लात-घूँसे बरसान लगे "सच-सच बक रडिए, नहीं तो "

"मत मारो मेरी दीदी को! मैंने तोडा है।"

अब चदना की मार खाने की बारी थी "कुतिए! कमीनिए!"

"छोडो जी उसे! मैं कहती हूँ, मैंने तोडा है।"

दाना बहुएँ मार खा रही थीं। लोग-बाग अब उन्हे छुडवा रहे थे।

"तुम लाग कौन हो? भगवान सजा देगा।"

ऊँची आवाज मे राती हुई चदना ने कहा "भगवान ने तो खुद ही कहा था सजा क्या देगा?"

"छोडो इस छोटी-सी बच्ची को। मुझे सच-सच बता।" वकील साहब की औरत ने चदना का अपने से सटा लिया। सिर पर हाथ फेरा "अब बाल मेरी बच्ची!"

"हर रात सपने म शिवजी आते थे " गला रुँध गया चदना का।

"हैं। सच?"

"कहते थे मेरे बच्चे नादान हैं। आपस मे लडते-झगडते हैं। तुम तो सगी बहनें हो। सब मेल-जाल से रहो तू अपनी बहन से मिलकर मुझे बीच से हटा द ।" सिसकिया से आवाज दब गई।

"हूँ।"

"सब झूठ फरेब बकवास!"

"नहीं-नहीं ऐसा मत कहा। ऐसा हाता है।"

"कई बार ऐसा सुना तो है।"

"छोडिए साहब, यह पट्टी गँवारों को पढाइए।"

"मुझे तो इस साजिश मे उस प्रोफेसर का हाथ लगता है।"

"लेकिन क्यो ? हमने उसका क्या बिगाडा था, क्या तोडा था जो उसने इस तरह से बदला लिया है ?"

"हूँ उस बेचारे ने तो उस दिन के बाद कभी इस तरफ का रुख ही नही किया।"

"आप बडे भोले हैं। उस दिन सबके सामने इन बच्चियो को प्रेरित तो कर गया कि रास्ता के अवरोधो को धराशायी कर देना चाहिए।"

"हूँ बात तो पते की है।"

"क्यो एस० आइ० साहब, उस पर इस्टीगेट करने का मुकद्दमा नहीं चल सकता ?"

"क्यो नहीं ! क्यूँ वकील साहब कोई तो दफा लगती होगी दुष्प्रेरणा की ?"

"हाँ-हाँ जैसे धारा 107, 109 या 125 वक्त हो गया पेशा छोडे। खैर यह तो हम ढूँढ ही लेगे।"

"मैं अभी मास्टर को ढूँढकर लाता हूँ।"

"शाबाश शेरू खाँ, तू शेर है।"

"रहने दो। हमे किसी से झगडा मोल नहीं लेना। क्या फतेहसिंह ?"

"हाँ-हाँ, यही हरि-इच्छा थी। उसी ने खुद देवियो को हुकम दिया। इसम हम क्या कर सकते हैं ?"

"अब झगडने से मतलब नहीं निकलेगा कोई।"

"तो फिर एक सीधी दीवार खडी करा लो बाच में।"

"जाओ वीरो और देवियो अपने-अपने घर।"

जाल-मुक्त

मृदुला, तुम कैसी हो ? तुमने थोडी देर भी मुझसे बातें करना मुनासिब नहीं समझा और चली गईं। जानता हूँ तुम मुझे गुनाहगार ठहरा नहीं सकतीं और न ही मैं खुद अपने को कटघरे में ला सकता हूँ, फिर भी यहाँ बैठा-बैठा मैं, कभी अपने को और कभी तुम्हें मुआफ नहीं कर पाता। और षड्यन्त्रकारी ? वह अभी तुम्हारे लिए दूधधुला भरोसेमंद है

इसी तरह के कितने ही वाक्य मैं अपने दायरे म फुसफुसाकर मृदुला तक पहुँचाता रहा अपने को कुछ हल्का अनुभव करने का यत्न करता रहा। मृदुला दुबारा मुझ तक आई नहीं—और सारा वक्त इतजार समेट ले गया।

मैं डायरी नहीं लिखता। फिर भी हिसाब लगाकर तुरन्त बता सकता हूँ, दो साल पाँच महीने और छ दिन के बाद आज मृदुला ने हमारे घर की दहलीज मे पाँव रखे थे।

वही तुम—मृदुला—जिससे मैं प्राय हर रोज मिलता था। और कुछ न सही तो पढने मे सहायता के बहाने भी मेरे सान्निध्य के मोह म आ जाया करती थी

हम एक दूसरे से बँधने के विषय मे

कुछ नहीं कहते थे, फिर भी मौन की भाषा, दिन-प्रतिदिन नवीन, पुष्ट एव बलवती होती चली जा रही थी, हम दोना के अन्दर ही अन्दर। इस भाषा को हम दोनो ही अपनी आयु, सामाजिक परिवेश की सीमाओ-वश शायद पढ नहीं पा रहे थे।

किन्तु माताजी ने खूब गहराई से उसे पढ लिया था। स्पष्ट अर्थ निकाल लिया था। नफे-नुकसान का हिसाब लगा लिया था और निष्कर्ष की आखिरी सीढिया तक बडी सफाई से जा पहुँची थीं। अतत उन्होन अपने अनुकूल, रास्ता हमवार करने मे बडी आसानी से सफलता हासिल कर ली थी।

मृदुला के पिता एक ठीक-ठीक-से सरकारी पद पर नियुक्त थे। लेकिन दिक्कत यही थी कि वे बार-बार बीमार पड जाते और शायद ही कोई महीना ऐसा आता हो जब पूरी तनख्वाह ले पाते हो। मृदुला की माँ बहुत ही नेक, भगवान् की अधी भक्त और साथ ही बहुत भोली महिला हैं।

इधर माताजी मेरी, उन माँ-बेटी से ऐसे ही प्यार जताते-जताते अपने घर का कितना सारा काम ले लिया करती थीं और परोक्ष रूप से उन पर अपने दयावान होने की छाप भी लगाती रहतीं। दोनो माँ-बेटी हमारे इतने बडे प्रतिष्ठित ठाट-बाटवाले घर से थोडी सुविधा सहानुभूति और जुडाव पाकर ही जैसे अपने को धन्य समझतीं।

और मैं, अगर कभी मृदुला के घर जाने की कोशिश करता तो माताजी मेरे ऊपर 'अपने स्तर' की अलिखित धारा आयद कर देतीं। मैं तो बस कभी-कभार हिम्मत करके माताजी से चोरी-छिपे उनके यहाँ हो आता। मेरे द्वारा वे अपनी नियत्रण-रेखा के उल्लघन के कारण उन माँ-बेटी से कुछ रोज तक रूखी-रूखी-सी हो जातीं।

और साथ ही वे अपना जाल बुनने मे तेजी लाने लगी थीं।

उधर वे महिला, माताजी से घबराई, मुझे सम्मान देने के बावजूद, जहाँ तक बन पडता मुझे अपने यहाँ से 'दूर-दूर' किए रहतीं। मगर मृदुला की शक्लो-सूरत देखने लायक होती। वह तो हर ख्वाबो-खयाल मे अन्दर ही अन्दर मेरी हो चली थी।

हाँ, उसी मृदुला को आज पूरे दो साल पाँच महीने और छ दिनो बाद अचानक अपने घर पर खडे पाया। अब मैं उसे ऐसे देखे चला जा रहा था जैसे वह मृदुला न होकर ससार का कोई महान् आश्चय हो या मेरी जिन्दगी में पहली दफा देखी गई जवान लडकी हो। नहीं कह सकता मैं मृदुला पर, कुछ क्षणो मे ही ऊपर से नीचे कितनी मर्तबा नजर दौडा गया था बिना विचार किए कि इससे मृदुला क्या सोचेगी।

एक औपचारिक नमस्ते के बाद वह सीधी माताजी के पास एक मूढा लेकर रसोई मे जा बैठी थी और मैं प्रत्येक क्षण में स्पदन अनुभव करने लगा था।

मुझे उसकी चाल में वैसी तेजी के बावजूद कुछ शिथिलता और सूरत मे

काफी बदलाव महसूस हुआ। मुझे मालूम है उम्र के साथ-साथ चेहरे की बनावट म ढीलापन आ जाता है। मगर मैं यह भी जानता हूँ कि उम्र बढने के साथ-साथ खुशियो की मिकदार मे इजाफा होता रहे तो चेहरे की रौनक आप-से-आप जाहिर होती रहती है।

मैं रोजमर्रा के ढर्रे पर लगभग तैयार खडा था। शाम घिर आई थी। छह बजनेवाले थे।

छह बजे हर रोज, चाहे दो मिनट के लिए ही सही मैं मि० मनीप एडवोकेट के यहाँ हाजिरी देने जरूर जाता हूँ। मनीप शहर के माने हुए एडवोकेट ह। जरूर किसी ने माताजी को परम गोपनीय सुझाव दिया होगा। माताजी ने एक राज मनीष साहब व उनकी पुत्री कामिनी के लिए घर पर अच्छी टी-पार्टी का आयाजन किया था। मेरा परिचय कराया कि इस वर्ष इसने एल-एल० बी० पास की है।

फिर माताजी के सुझाव या निर्देश का पालन करता हुआ मैं हर राज शाम छह बजे मनीष साहब के दौलतखाने जाता हूँ। प्राय वे मिल जाते हैं। जो पूछूँ, बडे प्यार से बताते-समझाते हैं। मेरा कैरियर, उनके और माताजी के हाथ आ लगा है। कभी-कभी वे नहीं मिलते पर हिदायत के मुताबिक मेरी हाजिरी पूरी हो जाती है। तब उपस्थिति अकित करनेवाली उनकी लाडली बेटी कामिनी होती है। वह अगर अपनी सहेलियो से घिरी नहीं हो तो बैठने को जरूर इसरार करती है। मुझे बैठना पडता है। एक कप चाय प्राय हो जाती है।

मैं बार-बार हाथ-घडी को देखता रहा—छह बजने मे कितनी देरी है? फिर मैं जैसे नए सिरे से तैयार होने लगा। फिर से बालो में पानी लगाने बाथरूम गया। कदमो मे हल्की-सी फुर्ती महसूस हुई। कान रसोई की तरफ लगे रहे। धीमे-धीमे जैसे कोई गुप्त मत्रणा हो रही है। अस्पष्ट स्वर के साथ जैसे रसोई से मात्र अँधेरा निकल रहा है, मेरे लिए। मैं अँधेरे मे क्या करूँ? मुझे अपने कमरे मे प्रतीक्षा करनी चाहिए। बालो मे तेल लगाया कघी की और फिर से अपने कमरे मे आकर धीरे-धीरे अलमारी के शीशे के सामने खडा होकर क्रीम-पाउडर से चेहरे को दुरुस्त करता रहा।

माताजी से बिना पूछे बडी मुश्किल से अलमारी की चाबी तलाश की। कभी एक साल पहले महेन्द्र की शादी के अवसर पर क्षणिक पुलक म बहकर एक टाई खरीद लाया था परन्तु उसे खोला तक न था। वही टाई निकाली। मगर फिर कुछ सोचकर उसे रख दिया।

मृदुला को आता न पाया तो कुछ देर के लिए सोफे पर निढाल-सा पडा

रहा। साथ ही जरा-जरा-सी आहट पर चौंकता रहा। रसाई से आवाज आनी बन्द होती तो चौकन्ना हा उठता। बस अब मृदुला इधर आती ही हागी।

मन मे खूब सारी उत्सुकता ओर प्रश्न इकट्ठे हाते चले जा रहे थे। हालाँकि जानता था ये सारे प्रश्न मेरे लिए सन्दर्भ-विहीन हा चुके हैं परन्तु हर उत्सुकता, जिज्ञासा का कोई ठोस आधार या उपादेयता हो ही, यह आवश्यक ता नहीं।

मैं जानना चाहता था, उससे पूछना चाहता था—मृदुला, तुम कैसी हो ?

फिर परोक्ष रूप से सब-कुछ पता लगा लेना चाहता था—पति, ससुराल वाला के साथ कैसा निबाह हो रहा है ? वह कितनी सुखी है ? काई बच्चा भी हुआ या नहीं ? क्या पता बच्चा होने से ही सेहत गिर गई हो। पर साथ ता है नहीं। हा सकता हे जान-बूझकर घर पर छाड आई हो। बच्चे के विषय मे साचकर मन म एक क्षण के लिए वितृष्णा-सी उपजी तो दूसरे ही क्षण बच्चे को देखने की लालसा भी जागृत हा उठी। फिर अपने दिमाग पर झुँझलाहट भी—ये सब अटकले मेरे अन्दर क्या पैर रखे चली आ रही हैं ? फिर यही झुँझलाहट मृदुला की ओर बढने लगी—आखिर इतनी देर से वहाँ क्या कर रही है ?

कुछ देर म माताजी कमरे मे आइ। मैं हडबडाकर खडा हो गया। माताजी पूछ रही थीं—"क्या, आज वकील साहब के यहाँ नहीं जाना क्या ?"

मैंने घडी देखी सात बज चुके थे। मैंने चाहा माताजी मृदुला के बारे म कुछ कहें। इधर-उधर से आहट ली। मैंने अनुमान लगा लिया—मृदुला जा चुकी है। इस तरह से फिर बाजी मेरे हाथ से जाती रही है।

मैं एक बार नए सिरे से मृदुला को देखना चाहता था। माताजी से पूछना चाहता था—मृदुला कैसी है ? सुखी तो है ना ? उसने ता अपनी कभी कोइ खैर-खबर नहीं भिजवाई। आखिर मुझसे मिले बिना चली कैसे गई ?

"फिर आज रहने दो। देर ता हो ही चुकी है। तैयार तो हो ही चाहा तो कहीं और घूम-फिर आओ। उधर वकील साहब के मत जाना।"

दिमाग भन्ना गया। आखिर उसे यहाँ आने की क्या जरूरत थी ? माताजी से सटकर क्या बैठी रही ? उसे यदि किसी कारणवश काई सकोच था तो माताजी ही उसे चन्द लम्हो के लिए मेरे पास भेज सकती थीं। वे क्या मेरी मन स्थिति का नहीं समझती थीं ? किन्तु अपने सम्मुख तो सदा-सर्वदा केवल 'वे स्वय' ही रहती हैं। अपने से बढकर उनके सम्मुख कोइ दूसरा महत्त्वपूर्ण हो ही नहीं सकता।

मैं बिना एक शब्द बाले सडक पर आ गया था। आने से पूर्व छत पर लघुशका के बहाने हो आया था। रसोई और कमरा मे भी आँखे फैला आया था। कहीं कुछ नही था जो नजर आता। ट्रक डबल बैड जैसा बडा सामान तक नही

दीखा था। रसोई मे ठीक हर वक्त आँखो से टकरानेवाली, नई चमक मारनेवाली अलमारी भी नहीं। आटे का ड्रम भी नहीं। आँगन में रखा टब भी नहीं। पूरे घर मे खालीपन व्याप गया था। मृदुला चली गई थी। सब-कुछ जैसे खत्म होता चला गया था मेरे लिए।

सडक पर ज्यादा देर मुझसे चला नहीं गया। घर के पासवाले छोटे-से साधारण पार्क की बेच पर जा बैठा।

मृदुला तुम कैसी हो? नाराज या खुश? अगर मुझसे नाराजगी हो तो सुन लो। तुम अपने-आपसे ही नाराज हो। क्योकि जहाँ तक मेरी इकाई का प्रश्न है यह इकाइ तो कहीं भी डाँवाँडोल नहीं हुई थी। तुम्हारे अभिभावक ही माताजी के शानदार जाल में फँसते चले गए थे। उन्हे अपने अहं की तुष्टि हेतु, यह कबूल नहीं था कि उनके लडके की अपनी इकाई स्वतत्र निर्णय लेकर अपना मार्ग प्रशस्त करे। लडका ही क्या उनका बस चले तो पूरे ससार को ही अपने हाथ की सूक्ष्म डोरी से हाँकती रहें। फिर उनका अपना रुतबा, सेन्ट्स साडियाँ किटी, तबोला, टिफन-पार्टी। वे तो क्लबो मे जाती-आती हैं। समधी कम से कम ऐसे तो होने ही चाहिएँ जिनका परिचय आसानी से, जानी-मानी हस्तियो से कराया जा सके।

उन्होने अपने एकमात्र लडके के आलसीपन, घटिया स्वास्थ्य एकातप्रियता आदि-आदि गुण-दोषो का ऐसा ताना-बाना बुना था कि तुम सब लोग एकबारगी घबरा उठे थे। मेरे हाथ की कमजोर डोरी से तुम्हारे घरवालो का मोह-भग हो गया कि इसके सहारे पूरी जिन्दगी कैसे चला जा सकता है? कभी भी टूट सकती है यह। तब माताजी ने ही अपने गाँव के एक निकट सम्बन्धी का घर आप लोगो को दिखाया था जिसके पास अपने बहुत सारे खेत थे कुएँ थे गाएँ-भैंसे थीं शुद्ध वायु थी। हवा के उसी रुख की ओर तुम बहने लगी थीं। शायद तुम डरती थीं या तुम सब हमारे घर की चकाचौंध से हीन भावना से ग्रसित होने लगे थे।

माताजी की इन बातो से और तुम्हारे ऐसे आचरण से मैं आहत हुआ था। मैंने चाहा था तुम्हारे सम्मुख पहुँचकर तुम्हे समझाऊँ, माताजी के मनसूबा को धराशायी करने का प्रयत्न करूँ न हो तो तुम्हारे सामने गिडगिडाऊँ। मगर मेरे व्यक्तित्व के प्रति तुम्हारे अन्दर जो अनास्था का पौधा पनपने लगा था उससे मैं छिल-सा गया था। और फिर मेरे स्वाभिमान ने बहुत ऊँची गर्दन निकाल ली थी।

इस तरह माताजी की योजना सफल हो गई थी।

तुम्हे उधर लगाकर माताजी ने मुझे दूसरी राह लगा दिया था और इधर-उधर की सारी राहो से होते हुए अब वकील साहब के घर के चक्कर लगाता हूँ। बकौल माताजी क इसी राह से मैं राजकुमार-सा कुछ बन जाऊँगा और वे चिरयुवा

राजमाता-जैसी कुछ कहलाएँगी। वैसे इस वक्त भी वे क्या कम हैं। राजमाता की उपाधि ही ठीक। 'माताजी' जैसे सबोधन से उन्हे चिढ है--मम्मा कहा करो। क्या मजाल किसी सफेद बाल को, जो किसी कोने से झाँकने की हिमाकत करे। घण्टा ब्यूटी पार्लर मे बैठना उनका शगल है।

मैं वहाँ पार्क मे ज्यादा देर तक बैठा न रह सका। मृदुला ने मेरी उपेक्षा की थी। क्या न मैं भी उसकी उपेक्षा करूँ? इस वक्त तो मनीष साहब जरूर घर से बाहर होते हैं। मैं उन्हीं के बँगले की ओर चल दिया। मैं बुरी तरह स चौंका। दूर से देखा--गेट से बाहर पहले से खडे रिक्शा मे मृदुला चढ रही थी। थोडी देर पहले शायद वह इसी रिक्शा से आइ होगी। रिक्शा मेरे पास से गुजर गया। मृदुला की आँखें झुकी हुई थीं। मैं द्रवित-सा हो उठा। मैं उधर ही देखने लगा जिधर रिक्शा गया था, जैसे पीछा करूँगा।

"आइए, अन्दर आइए!" कामिनी की जबान पर शरारत थी "उधर क्या देख रहे हैं?"

मैं चुपचाप अन्दर चला गया और बैठ गया। हमेशा की तरह बात की शुरुआत माताजी से--"सुनाइए माताजी का क्या हाल है?" हमेशा की तरह माताजी की जिन्दादिली का बखान। मैं चुप रहा तो वह हमेशा की तरह मेरे चेहरे को खास अदाज से निहारने लगी और बिना वजह मुसकराने लगी।

कामिनी की तरह माताजी भी मुझसे कामिनी का हालचाल पूछती रहती हैं। आए दिन बिना बात उसी की चर्चा कि बहुत-बहुत अच्छी लडकी है खानदानी। बीमारी की वजह से बेचारी ज्यादा नहीं पढ पाई। बचपन मे माँ के प्यार से वचित। बाप की लाडली बेटी है। इकलौती सतान। वही सारी जायदाद की वली-वारिस बनेगी। सयानी इस कदर कि किसी का भी मार्गदर्शन कर सकेगी। ऐसी ही लडकियाँ सुचारु रूप से गृहस्थी चला पाती हैं।

मैं हैरान होता--एक या दो दफा कामिनी से मिली होंगी और उसके छोटे से छोटे गुण से भी वाकिफ। और मैं? मुझे क्या समझती हैं? अब तक मुझे उनके मार्गदर्शन की जरूरत है और आगे कामिनी के मार्गदर्शन की जरूरत होगी।

"चाय लीजिए!" कामिनी ने मेज पर ट्रे रख दी थी।

"ओह!" मैं चौंका--"यह हर रोज क्या तकलीफ करती हैं?"

"कब तब मुझे *आप* कहते रहेंगे?" उसने कुछ-कुछ शरमाने का अभिनय किया। सब-कुछ बनावटी और रटा-रटाया।

फिर भी कुछ क्षणो तक मैं उसके यूँ शरमाने आवाज की तरग और जिस्म को खास तरह से लोच देने के अदाज से मन लगाने का यत्न करता रहा। किन्तु

जल्दी ही ध्यान सामने बैठी कामिनी से हटकर मृदुला का पीछा करने लगा। मैंने जैसे-तैसे पूछ लिया—"क्या वह आपकी सहेली है ?"

"कान ?"

"वह जा आपक पास आई थी ?"

"मेरे पास ? अच्छा अभी-अभी जो रिक्शा से गई है ?"

"हाँ वही।"

"मेरे पास नहीं आई थी। आपकी माताजी ने ही तो भेजा था पिताजी के पास।"

"क्या ?"

"अपने पति से तलाक़ लेना चाहती है।"

मेरा सम्पूण मानस पिछले डेढ-दो घण्टा से अपने आवेगा से उथल-पुथल हो रहा था। इस सूचना ने मुझे हिलाकर रख दिया—मृदुला को लेकर किंचित् कटुता की पर्ते दबने लगी। उसके प्रति मन द्रवित-सा हा उठा और साथ ही न जाने कसी भावना से मेरा शरीर सहल गया जैसे बेहद गर्मी के बीच सहसा कुछ क्षणा के लिए हवा का ठण्डा झाका आया हो।

"आपने उससे पूछा नहीं, क्या ?"

मने कामिनी से पूछा ता शायद वह कुछ उत्तर दे रही थी परन्तु में और कहीं भटकता हुआ किसी दूसरी राह मे खाने लगा था। मुझे एक बार ऐसा भी लगा जिस राह का फाटक मैं हमेशा-हमेशा के लिए बन्द समझता था अकस्मात् मरे सम्मुख खुलना चाहता है।

"आपने कुछ कहा ?" मैंने फिर से कामिनी को सबोधित किया।

"आपने कुछ पूछा था ?" वह हँसने लगी—"पिताजी को कहकर यह केस आपका दिलवा दूँ ? आखिर आपने कचहरी मे पैर जमाने हैं।"

"आप क्या चाहती हैं मैं शुरुआत ताडने से करूँ ?" कुछ क्षणा के मोन के बाद मैंने उत्तर दिया।

कामिनी फिर से नाटकीय ढग से हँसने लगी "इतनी भावुकता से कहीं वकालत हाती है ? आप दा-दो मिनट मे कहाँ खा जाते हैं ? उसे जानते तो हागे। उसी के पास जाना चाहते हैं ता चले जाइए, हम नहीं राकेगे।"

मैं सचमुच वहाँ से फोरन चल दिया। कामिनी जार-जोर से हँसती चली गई फूहड-सी हँसी। किसी भी नारी की हँसी किसी पुरुष का आकृष्ट करती है माहती है। मैं हँसी को 'स्थायी अनुगूँज' के विषय म सोचता चला गया जिससे मरे भीतर का पुरुष स्थायी प्ररणा पाता रहे।

फिर से वही घर के नजदीकवाला छोटा पार्क। वही बेंच और मैं। फिर से वही पुरानी मृदुला और मैं। कई-कई पुरानी राहों से गुजरते, उलझते नई राहों की तलाश में छटपटाते हम दोनों, बीच-बीच में झाँकती दो माताएँ, वकील मनीष साहब, उनकी सुपुत्री कामिनी। ये आकृतियाँ हमारे अनस्तित्व की परिचायक बनतीं जैसे इन सब लोगों के बीच में मैं और मृदुला फालतू-से उग आए हैं। परन्तु नहीं। इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं हमीं दोनों। मुझे मृदुला को बताना होगा कि वह समझे कि वही बहुत महत्त्वपूर्ण है। अपने साथ सिर्फ मुझे महत्त्व दे। सिर्फ मुझे।

कोई आदमी उम्र बड़ी होने पर भी, पढ़-लिखकर भी, क्या दूसरे की अँगुली पकड़े रहता है? अपने लिए स्वयं कोई निर्णय नहीं ले पाता। हमेशा सही विकल्पों का अभाव अनुभव करता रहता है और दूसरों के सुझाए रास्ते ही उसे ठोस नजर आने लगते हैं। अपेक्षित लक्ष्य के प्रति एक उदासीनता का भाव भी ढोता चलता है।

यही सब तो उससे और अपने से पूछना है।

दूर कहीं से टन-टन की आवाज। एक के बाद एक घंटा बोल रहा था।

नौ या दस बजे थे। चारों ओर खूब अँधेरा फैला था। अनजाने ही मुझे एक स्फूर्ति-रेखा राह दिखाने लगी। मैं पिछली सड़क पर आ पहुँचा। एक टैक्सी को रोका। मृदुला के घर से कुछ दूर उसे छोड़ा।

मृदुला के घर पहुँचा। कहा—"जल्दी चलो, माताजी बुलाती हैं।" जैसे-तैसे उसे बाहर निकाला। टैक्सी में डाला और फिर सिविल लाइन्स के निकट एक बड़े होटल में अपने हाथ से धकेल ले गया।

एक अलग केबिन में हम दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने थे।

थोड़ी देर पहले मुझे ऐसा लगा था कि मृदुला के बैठते ही मैं उस पर सैकड़ों प्रश्नों की वर्षा कर दूँगा।

परन्तु नहीं। ऐसा कुछ नहीं हुआ। लगा कि शायद कुछ गलती हुई है, हम ख्वाहमख्वाह होटल के इस केबिन के फर्श को देखने के लिए यहाँ चले आए हैं। और कोई काम नहीं है तो बस धीरे-धीरे चाय का एक-एक घूँट गले के नीचे उतारे चले जा रहे हैं। फिर यदा-कदा अपरिचितों की भाँति नजर उठाकर एक दूसरे पर डाल देते हैं कि यदि किसी के पास कुछ पूछने को हो, तो पूछ ले।

"साहब, कुछ और?" बेयरे ने आकर पूछा तो मैंने मृदुला की ओर इशारा कर दिया। वह कुछ न बोली तो मैंने बहुत सारी चीजों का एक-साथ ऑर्डर दे दिया।

"किस खुशी में यह पार्टी दे रहे हैं?" उसकी आँखें छलछला आईं—"क्यों लाए यहाँ?"

"अपने प्रति तुम्हारी क्रूरता का कारण जानने।"

"मैंने तो कुछ कहा नहीं, जिससे आपको कटुता का अहसास हो।"

"निरपेक्षता कटुता से अधिक मारक होती है मृदुला।" मैं बहुत भावुक हो चला था। अपने तईं द्रवित था या उसके आँसू देखकर पसीज उठा था—"तुम तलाक लेनेवाली हो?"

"हाँ।"

"किसलिए?"

"मेरी किस्मत। वह चाहते हैं। और आपकी माताजी "

"तुम इसके लिए बाध्य नहीं हो।" मेरा स्वर तेज था।

"अब मैं भी चाहने लगी हूँ, बल्कि उनसे ज्यादा। कहीं पर जबर्दस्ती चिपटे रहने से आदमी अपनी ही नजरो से गिर जाता है।"

"वह तो ठीक है, पर उनकी तरफ से, कारण?"

"नैतिक मूल्यो की और पवित्रता की दुहाई। किसी ने आपका नाम मेरे साथ जोड दिया। बस, मैं कुलटा हो गई। कभी देवर के पास बैठा पा लिया न जाने कैसी नजरो से देखने लगे। फिर मेरा अतीत कुरेदना और मुझे बात-बात पर अपमानित करना उनका शगल हो गया है।"

"मैं भी उसे थोडा जानता था पर माताजी तो सब-कुछ जानती थीं और अब "

मेरी बात बीच में काटते हुए मृदुला फिर बोलने लगी—"अब मैं ही सबसे ज्यादा जानने लगी हूँ उन्हें। वे स्वय क्या हैं? न ढग की सोच न ढग का जिस्म। चारो ओर से बदनाम। ऐसे हाथा उजडने से अच्छा है अपने हाथों अपने दिनो को सँवार ले जाऊँ।"

मेज पर पडे उसके हाथो को स्वत मेरे हाथो ने घेर लिया—"थोडी देर पहले तुम किस्मत को दोष दे रही थीं। हमारा भाग्य-नियामक सदा अदृश्य ही क्यो रहता है? बहुधा किस्मत बिगाडनेवाला हमारे सामने रहता है, फिर भी हम उसे पहचान नहीं पाते। तुम्हारे साथ यही ट्रेजेडी है। पहले तुम्हें मुझसे अलग कर गाँव भेज दिया अब 'अपने उसको' डाँटने-समझाने की बजाय सिर्फ अपने वकील साहब को मामूली-सा केस देने के लिए तुम्हें उनके पास धकेला जा रहा है।"

"ओह!" मृदुला के मुँह से चीख-सी निकली, जैसे पटाक्षेप के हटते ही उसने भयकर दृश्य देखा हो।

"अब?"

लगा हमारे बीच जो कुछ अपरिहार्य था वह अब धीरे-धीरे हमारी चेतना में भरना शुरू हो रहा है। ●

कारोबार

लंबा रास्ता था जिसे मैं पैदल तय कर रहा था। अब दूर से मुझे जो दृश्य दिखाई दिया, उससे राहत मिली कि मंजिल के करीब आ लगा हूँ। सामने बहुत भीड थी। सुबह-सवेरे इतने सारे लोगों की एक-साथ उपस्थिति यही दर्शा रही थी कि भक्तजन है। मन्दिर पास ही होगा।

दरअसल मुझे मन्दिर नही जाना था। मुझे तो सुन्दरजी का मकान ढूँढ निकालना था। हसन भाई ने जिस तरह से रास्ता समझाया था उसके मुताबिक पहले मन्दिर मिलेगा। फिर मुझे मन्दिर से आगे सीधा बढना होगा। जब तीसरी गली आए तो उसमे मुड जाना। तब कोई भी तुम्हे सुन्दरजी का घर बता देगा।

मैं जहाँ पर भी होता हूँ, अकसर अपने से पूछता हूँ कि मैं यहाँ पर क्यो हूँ? यही प्रश्न-राग जब-तब लबा खिचने लगता है तो मैं यहाँ तक पूछने लगता हूँ कि मैं इस ससार मे ही क्यो हूँ?

यही प्रश्न मैं, केशवचन्द्र जी की मैरिज एनिवर्सरी पार्टी मे अपने से पूछ रहा था कि यहाँ जहाँ पर न मेरी कोई जान-पहचान है न कोई औकात मैं यहाँ पर क्या हूँ? क्यो हसन भाई मुझे यहाँ खींच लाया?

औरते और मर्द फिल्मी दृश्यो की नकल करने की कोशिश मे फूहड तरीके से नाच-गा रहे थे। झुड बनाकर आपस म चुहलबाजी और घटिया मजाक कर रहे थे। मै सबसे कटा अलग-थलग एक कोने मे दुबका खडा था।

कुछ देर बाद हसन भाई, मुझे कधे से आहिस्ता-से पकडकर एक तरफ ले गया। तब वही सुन्दरजी मुझे बडे तपाक-से मिले थे। मेरा आगा-पीछा पूछा था—और फिर जैसे कोई नतीजा निकालते हुए जोशीले स्वर मे बोले थे—'ओह माइ गॉड! तब तो तुम हमारी मिसेस के भाजे लगे! दूर के ही सही, पर भाजे हो। ऊपर से हसन भाई की सिफारिश। किसी भी दिन आकर हमसे मिलो।'

तब उस दिन मैं थोडा आश्वस्त हुआ था कि मैं वहाँ पर क्या था। मैं भीड के नजदीक पहुँचा, तो वहाँ पर कोई मन्दिर दिखाई नहीं दिया। एक आदमी सबसे अलग यूँ ही गफलत मे आसमान की जानिब निगाहे उठाए खडा था। मैंने उसी से पूछा—"क्या यहाँ पर कोई मन्दिर नहीं है?"

उस पतले आदमी ने जिसके कधे और गालो की हड्डियाँ साफ दिखाई दे रही थीं एक उखडी हई साँस ली। फिर न जाने कैसे जबान म जोश भरते हुए उत्तर दिया—"हाँ-हाँ भाईजी, सामने ही तो है! भला इससे बडा कौन-सा मन्दिर होगा?"

जरा-सा आगे सरका तो एक भभका मेरी नाक मे आ घुसा। समझ गया यहाँ कौन-सा मन्दिर है। मदिरालय मे सुबह ही से समर्पण-भाव से आनेवाले भक्तो का रैला-पेला है। इसी प्रकार, थोडा आगे बढने पर लाटरीबाजो का हुजूम था। यहाँ पर भी वैसा ही जोश हिलोर मार रहा था।

अतत रास्ता भटकते और पूछते-पुछाते सुन्दरजी के ठिकाने पर जा पहुँचा। कॉल बेल बजाई।

दरवाजा एक महिला ने खोला। उसकी खाल खुश्क थी और सिर मे एकाध ही कोई काला बाल नजर आता था।

मैंने बताया—"मैं विशाल हूँ। शायद आप ही "

"हाँ-हाँ बैठो।" उन्होने इधर-उधर देखा।

"यह सुन्दरजी का ही घर है ना?"

"हाँ-हाँ नहा रहे हैं। अभी आते हैं।"

"आपको बताया तो होगा। उस दिन एक पार्टी म मिले थे। आप ही शायद मेरी मौसी लगती हैं।"

"हाँ-हाँ बताते रहते हैं। आप किधर रहते हो?"

"मुहल्ला चाँद खाँ। यहाँ स काफी दूर पडता है। आप आइएगा।"

"हमे इस शहर के बारे म कुछ पता नहीं। यहाँ ट्रासफर पर आते ही अपनी उलझना मे लगे रहे। इससे तो यह अफसरी नहीं मिलती।"

उनकी क्या परेशानी हो सकती है मैं इसकी तरफ ध्यान नहीं दे पाया और अपनी धुन म बोल गया—"अच्छा अफसरी `कौन-से दफ्तर मे ? तब तो कुछ काम बन सकता है।"

"अरे कहाँ।" व धीरे-धीरे खुलने लगीं—"छह महीने पहले आबकारी से रिटायर कर दिए गए तो बोले—फिर से बेरोजगार हो गया हूँ।"

"क्यो, ऐसा क्या ? आपको भला क्या कमी हो सकती है।"

"यही तो बात है। चाहते तो औरा की तरह लाखा बना लेते। एक से एक अच्छी पोस्ट, सीट पर काम किया। मगर अपने सिद्धान्तो को दुलारते रहे। तीनो ही लडकियों को खूब पढाया-लिखाया पर किसी की भी सिफारिश नहीं की। अब कहते हैं करूँगा। वाह नौकरी छूट जाने के बाद। यह कौन-सा तरीका है ? अब नौकरी भी लगवाएँगे और शादियाँ भी करगे।"

मैं भी एक के बाद दूसरा प्रश्न करने लगा और उत्तर सुन-सुनकर उलझने लगा। लडकियाँ किन्हीं प्राइवेट स्कूलो मे मामूली पैसो पर काम कर रही हैं। इससे क्या बनता है।

बाते चल रही थीं कि मौसाजी मेरे पीछे आ खडे हुए—"यह तो यूँ ही बोलती रहती है। चलो मेरे साथ। देखना अब, हमारे क्या ठाट हैं। सच तो यह है कि सर्विस म हम-जैसो के पास कुछ नहीं होता।"

मौसीजी नाश्ता बनाने लगीं तो बोले—"रहने दो। वहीं कहा कर लेगे। देर हो रही है। सब इतजार कर रहे होगे। कई रोज से पहुँच नहीं पाया।"

"तबीयत ठीक न हो तो कोई क्या करे। आज और रैस्ट कर लो।" आवाज मे शिथिलता थी।

बिना मौसी की बातो की तरफ ध्यान दिए मौसाजी, मुझे लिये, बाहर निकल पडे।

रास्ते मे मैं सोचने लगा—अब इस उम्र मे मौसाजी ने कौन-सा काम पकड रखा है ? मुझे अपने कौन-से ठाट दिखाने ले-जा रहे हैं ? उनके 'ठाट' बोलने पर मुझे कुछ आधा हुआ-सा उत्साह लगा। 'ठाट' के अदर की परतो में मुझे हताशा का आभास हुआ। मौसीजी की जबान में तो हताशा स्पष्ट थी। परन्तु स्थिति दोनो की समान लगती थी। लबे-पतले सफेद बालोवाले, स्त्री-पुरुष। शायद मेरी ही तरह समय के साथ जूझ रह थे। तन-मन से समान।

फिर भी मेरी परेशानी मेरी परेशानी थी। पढ-लिखकर वर्षों से बारोजगार

न बन पाने की टूटन मेरे दिलो-दिमाग का हिस्सा बन गई थी। इसी तल्खी के आलम म मैं अदर ही अदर तिलमिला उठा—यह बुड्ढा अब मुझे क्या काम दिलवाएगा? किन्तु ऐसी सोच पर मुझे तत्काल अपन पर खीज और शर्मिन्दगी हुई। आदरयुक्त स्वर मे बोल उठा—"मेरे पहुँचने मे थोडी देर और हा जाती तो आप घर से निकल चुके होते। मेरे भाग्य अच्छे थे जा आप मिल गए। दरअसल " इतना कहने के बाद मैं जरा-सा अटका और फिर जल्दी-जल्दी रास्ते के सब पडावा का जिक्र करने लगा।

"अच्छा," वे बोले "तब तो मैं यूँ ही तुमको मिल गया होता।"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा?"

"अपन उधर ही तो चल रहे हैं।"

मैंने जिज्ञासा प्रकट की—"किधर?"

या ता उन्हाने सुना नहीं, या जानकर टाल गए। हवा फर-फर बहने लगी थी। वे भी उसी दिशा मे अपने शरीर को गति देकर जरा और तेजी से चलने लग थे। मे भी अपने कदम उनके बराबर रखता रहा। फिर सकोच छोडकर पूछ ही बैठा—"मेरे लिए कुछ हुआ?"

हवा मे उडते अपने सफेद बालो को हाथ मे लेते हुए मौसाजी ने फिर से जोश से कहा—"देखते चला।"

'क्या रहस्य है?'—मैंने सोचा और फिर से चुपचाप उनके साथ चलता गया।

मन्दिर से काफी बाद वही मोड आया, जहाँ लॉटरी के टिकटो के वार-न्यारे हो रहे थे।

"सुन्दरजी सुन्दरजी" हवा मे कई स्वर एक-साथ सुनाई दिए, जैसे मुख्य अतिथि या निरीक्षक के आने पर कार्यकर्त्ता/कर्मचारी एक-दूसरे को सचेत करते हैं। देखते ही देखने कई लोग होड की मुद्रा मे एक-दूसरे से आगे बढ आए। कुछ उनसे हाथ मिलाने लगे। दो-तीन बुजुर्ग लोगो ने उन्हें गले लगाया। इसी प्रकार कई युवक उनके पाँव छूने लगे।

सभी बारी-बारी से उन्हे रुपए गिनवा रहे थे—"यह रहा चार रोज का हिसाब। और काई सेवा?"

"इस लडके को काम चाहिए।" उन्होने मेरी ओर इशारा किया।

मेरे पास मेरे पास की रट लग गई—"जितने रुपए आप जायज समझें दे दिया करगे। आप तो जानते हैं हमार पास और भी बहुत-से काम हैं।"

"ठीक है। अभी चलते हैं।" कहते हुए उन्होंने मेरा हाथ पकडा और हम आगे बढ गए।

रास्ता वही था जिधर से मै आया था।

शराबखाना आने पर वे वहाँ भी रुके। वहाँ पर भी वही आलम। सुन्दरजी के सम्मान मे बहुत सारे सिर झुक रहे थे। उन्होने भी सुन्दरजी का रुपये दिए। इन लोगा ने भी मुझे काम देने का पक्का आश्वासन दिया कि जब जी चाहे आ जाए दरवाजे खुले हैं।

परन्तु मैंन ऐसे लोगा के पास काम करन स साफ इन्कार कर दिया—"इससे तो आप मुझे कहीं पर भी क्लास फोर्थ म भरती करवा दे।"

"मुझ ही दखा, मन क्लास वन अफसरी म क्या पा लिया? कुछ बात आदमी के जेहन मे बहुत बाद मे आती है। प्रशासन जितनी चीजा पर प्रतिबध लगाता है—वही, कई लोगा की आमदनी का जरिया बनती है। सर्विस मे रहते हम इस सच को झुठलाते रहे।"

अपने ही खयालो म वे जैसे मुझे नही, अपने ही का भाषण पिला रहे थ।

मन उदास ओर उचाट हो चला था। मौके की तलाश मे था कि खिसक लूँ। तभी हमारी बगल म एक कार रुकने की आवाज क साथ ही अपनत्वभरा स्वर सुनाई दिया—"बैठिए।" कार से निकला हाथ उनके कधे पर था।

हम दोना कार म बेठ गए। सुन्दरजी न उनका परिचय दिया—"बहुत बड रेस्टारेट के प्रोपराइटर हैं। हम इन्हे शाहजी कहते हैं।" मेरा परिचय देते न देते रस्टारट आ गया। उसी रेस्टारट के सामने 'यग क्लब' का एक मटमैला-सा बाड झूल रहा था। शाहजी की कार से सुन्दरजी को उतरते देख एक लडका इधर ही को लपका—"शुक्र है सर आप आ गए। यहाँ रेड पड गई है।"

"चलो देखता हूँ। चार रोज से, मेरे न आने का यह नतीजा है। शाहजी, आप इसे बिठाइए। अभी मामला सैट-राइट करके हाजिर हुआ।" यह कहते हुए सुन्दरजी तत्परता स यग क्लब की तरफ चल गए।

शाहजी ने मुझे एक केबिन मे बिठाया। खुद पानी लेकर आए और मेरे सामने बैठ गए। अपने ओर सुन्दरजी के पुराने सबधों की चर्चा छेड दी। फिर सुन्दरजी के बारे मे बताने लगे—"निहायत इमानदारी से नोकरी करते रहे। न खाएँ, न खाने दे। कहते रिटायर हाने पर असली कमाइ से इतना तो मिल ही जाएगा जिससे परिवार किसी तरह सँभलता रहेगा। मगर साथिया को लगता कि उनके रिटायर हाने तक ता उन लागा का काफी नुकसान हो चुकेगा। इसीलिए ऐसी रचना रची कि इन्हे नौकरी से बरतरफ हाना पडा। नाकरी छूटी सो अलग। ग्रेचुटी वगैरह-वगैरह भी रुक गइ। चार महीन तक ता गुमसुम पडे रहे—क्या कर क्या न कर। कोट कोन-से जल्दी फैसले देता है। हम लागा क

कहने पर अब यह फील्ड-वर्क करने लगे ।"

मैं अपने को रोक नही पाया। शाहजी को बीच मे टोकते हुए बोल पडा--"मुझे तो मोसाजी का व्यवहार कुछ असामान्य-सा लगता है।"

"ऐसा तो नहीं है।" शाहजी फिर कहने लगे--"अगर किसी को ऐसा लगा हो तो कौन-सी बडी बात है। जरा सोचो, जिस शख्स ने जिन कुर्सियो पर बैठकर अपने लिए कुछ न बनाया हो अब उन्हीं कुर्सियो के माध्यम से इस परेशानी की हालत मे घरवालो के साथ-साथ दूसरो का भी पेट भर रहा है। कानूनी दाँव-पेच की बारीकियाँ इससे क्या छिपी हैं। किसी को परेशान नहीं देख सकता। किसी को भतीजा किसी को साला या भाजा बनाकर कोई न कोई काम दिलवाने की फिक्र करता रहता है। ओह, अब समझा तुम भी शायद "

मैंने घडी पर निगाह डालते हुए शाहजी का वाक्य काट दिया--"हाँ-हाँ पर अभी किसी को टाइम दे रखा है। कह दीजिएगा, फिर आऊँगा। सामने का क्लब शायद जुआघर है।"

"हाँ लोग-बाग ऐसे ही जरा शगल कर लेते हैं। तुम बैठो तो, अभी आते होगे।"

"उधर ही देख लूँगा।" कहता हुआ मैं बाहर आकर एक दीवार के कोने मे छिप गया। सामने से वे आ रहे थे। साथ म कोई वर्दीधारी था। नजदीक की झाडी के पीछे आकर दोनो रुक गए। उन दोनो की धीमी आवाजे किसी तरह मेरे कानो की गिरफ्त मे आ रही थीं।

"ऐसे कैसे काम चलेगा?"

"हम भी तो कुछ बचना चाहिए, वरना "

"ठीक है मगर आजकल के हालात आपसे छिपे नहीं हैं। ऊपर मत्रियो तक पहुँचता है।"

"भाई साहब फिर भी इतनी डिमाड मत कीजिए कि सब के सब बेरोजगार हो जाएँ।" आवाज मे कपन और गिडगिडाहट थी।

मैं बडी सफाई से छिटककर दूर जा पहुँचा। एक बार मुडकर देखा वे रेस्टोरेंट की तरफ बढ रहे हैं। तेज हवा के झोको से उनके सफेद बाल उलझ रहे हैं।



मेमरा काशू उर्फ सुलगती हुई याद

तीसरा नबर मरा था।

"मेमरा काशू।" मेरे मुँह से धीरे से यही नाम निकला।

मीटिंग बर्खास्त हुइ।

ममरा काशू का नाम चीफ इंजीनियर के स्टेनो ने भी नाट कर लिया था।

तीसर या चाथे दिन साहब न मुझे अपने चेम्बर म बुलवाया। मेमरा काशू का पता लिखाने को कहा। मैंने दिलीपनगर बताया।

"क्या वह यहीं आपके साथ नहीं रहता?" साहब ने पूछा।

"जी नहीं।"

"मेमरा काशू "साहब दुबारा फाइल म पढत हुए बुदबुदाए—"कैसा अजीब-सा नाम है!" फिर थाडा सोचते हुए पूछा—"क्या यही तुम्हारे भतीजे का नाम है?"

"जी नही।"

"अच्छा?" साहब आश्चर्य प्रकट करते हुए बाले—"आप तो अपन भतीजे को लगवाने की बात कह रहे थे ना?"

"जी, कह ता जरूर रहा था लेकिन ।" वाक्य मैं पूरा न कर सका आर जैसे किसी सोच म डूब गया।

"लकिन क्या हा गया?" साहब ने मुझे रुकते देख फिर से पूछा।

''हो सकता है साहब, मैंने यही सोचा हो कि यह मेरा भतीजा तो अपने ही फालतू लफडा मे पडकर नहीं पढ पाया हो, जबकि ।'' मैं फिर अटककर रह गया।

''आर यह क्या नाम लिखवाया 'मेमरा काशू?''

''हाँ, मेरा ही ईजाद किया हुआ नाम मेमरा काशू। यह मेरी ही नालायकी की वजह से पढाई म पिछड गया।''

''वह कैसे?'' साहब ने पूछा। तभी टेलीफोन की घटी बज उठी।

उन्हान कुछ देर तक बात करने के बाद कहा—''चीफ इजीनियर बुला रह हैं। चलिए, आप भी साथ चलिए। अब तो छुट्टी का वक्त हो चला है।''

बँगले पर चीफ इजीनियर आर बडे साहब कई ममलो पर बातचीत म मसरूफ हो गए। मैं साइड-सोफासैट पर बैठा चुपचाप कुछ पत्र-पत्रिकाओ के पृष्ठ पलटता रहा।

वे उठे तो मैं भी उठ खडा हुआ। अब चीफ इजीनियर ने मेरी तरफ गौर किया। जैसे कुछ याद करते हुए फिर से बडे साहब से मुखातिब हुए—''हाँ भई इनके आदमी का काम हुआ? वाकई हम इन तीन जना के काम स निहायत खुश हैं। पिछल पूरे साल में इन तीना की कान्फिडशियल रिपार्ट मे 'आउटस्टेडिंग' हैं। हमने पिछले साला भी यही पॉलिसी अडॉप्ट की थी कि ऐसे लोग, अपनी मर्जी के आदमियो को, अपने विभाग म लगवा ले।''

''जी हाँ, आज क जमाने मे यह बहुत बडा इनाम है। इससे स्टाफ एन्कॉरिज होता है। बाकी दो ने तो अपने अति निकट सबधियो क पते भी लिखवा दिए हैं।'' बडे साहब ने अपनी टाई पर हाथ फेरते हुए उत्तर दिया।

''आर इन्हाने भी तो नाम दिया था ना?'' चीफ साहब ने मेरी तरफ देखते हुए कहा—''कुछ अजीब-सा नाम लिखवाया था आपने क्यो?''

''जी हाँ।'' बडे साहब ने उत्तर दिया—''आज डिटेल्ज लेने बैठा था। साहब यह मेमरा काशू इनका काई रिश्तेदार तो है नहीं।''

''ओर मेमरा काशू!'' चीफ साहब हल्के-से मुसकराए।

''हाँ साहब यह काइ नाम भी नहीं। हमारे इन्ही का डाला हुआ नाम है मेमरा काशू।'' बडे साहब ने अपनी हँसी दबाने की कोशिश की।

''वाह क्या नाम दिया है मेमरा काशू।'' चीफ साहब खुलकर हँसने लगे।

मैं एकदम गभीर और उदास हो गया।

''क्या बात है। अरे क्या हुआ आपको?'' शायद चीफ साहब ने मेरे चेहरे के भाव पढ लिये थे।

बड साहब बाल—"यह कहते हैं कि इन्हीं की वजह से मेमरा काशू पढ नही पाया। ममरा काशू का नाम आते ही यह उदास परेशान हाने लगते हें। यही सब जानने के लिए इन्हे आज अपने साथ ले आया। आज घर पर हमारे कोई ह नहीं। साचा इन्हीं से गपशप मारी जाए।"

"ता आप लाग हम ही कपनी दीजिए ना! आज हमारी मेम साहब भी आउट ऑफ स्टेशन हैं। यहीं सब इतजाम हुआ जाता है।"

उन्हाने बावर्ची का बुलाया। पहले चाय फिर कुछ पीने आर खाने की फहरिस्त बता गए।

हम लॉन मे थ। बीच में बत की टबल। आसपास गाडन चयस। इत्मीनान ओर सुकून का माहौल जुटाने म मशगूल। वेफर्ज उठाते। चाय सिप करते। हल्की-फुल्की बात। कभी टूटी-फूटी सडकों पर हँसते तो कभी हर किस्म की शहरी गदगी को कासते। ढिशूँ-ढिशूँ फिल्मा पर तरस खात। दाना साहब मूड म थे। मरी उदासी देखकर एकदम मुझ पर काई वजन वाली बात नहीं डाल रहे थे। लेकिन मैं खुद ही समझ रहा था कि बाकी की सब बाते अपनी जगह, मगर असल मे दाना के ही आस-पास जरूर कहीं मेमरा काशू मँडरा रहा है।

अब व्हिस्की के पैग के अदर पहुँचते ही चीफ साहब अपने का राक नही पाए। उनके मुँह से जसे आप-से-आप निकल पडा—"ओह मेमरा काशू।"

"कह भी जाओ मेमरा काशू को।" बडे साहब ने एक पेग बनाकर मेरी तरफ सरकाते हुए कहा। फिर आसमान की तरफ देखने लगे जैसे वहीं से ममरा काशू का ढूँढ लान म व्यस्त हा चल हा।

"हाँ-हाँ तो सुन लीजिए मेरी नीचता की कहानी।" मैं दूसरा पैग गले से नीचे उतारते हुए जेसे नशे मे चीख-सा पडा—"सुनकर, आप मुझे क्या जलील करग, जितना जलील म खुद ही अपनी नजरा म हा चला हूँ।"

अब वे दाना खामाश हो गए थे और मैं भी चुप हा गया।

कुछ देर बाद एक और पैग तैयार करता हुआ मैं बोझिल स्वर मे धीर-धीर बालने लगा—"ता सुन ही लीजिए किस्सा—पिछले नवबर ही की बात है। हम लागा न दिलीपनगर मे जा-जान से काम किया था जिसके एवज मे आपने यह महरबानी की कि मैं भी अपनी मर्जी के एक आदमी को खलासी भरती करवा सकता हूँ।"

"हूँ-हूँ। ठीक है, यह तो हमारी तरफ से होना ही चाहिए।" चीफ साहब पर भी खुमारी छाने लगी थी।

"भूलिएगा नहीं साहब, आपन यह भी वायदा किया है कि आप उन्ह कुछ

"हो सकता है साहब मैंने यही सोचा हो कि यह मेरा भतीजा ता अपने ही फालतू लफ्डा मे पडकर नहीं पढ पाया हो, जबकि ।" मैं फिर अटककर रह गया।

"और यह क्या नाम लिखवाया 'ममरा काशू?"

"हाँ मेरा हो इजाद किया हुआ नाम मेमरा काशू। यह मेरी ही नालायकी की वजह से पढाइ म पिछड गया।"

"वह कैसे?" साहब ने पूछा। तभी टेलीफान की घटी बज उठी।

उन्हाने कुछ देर तक बात करने के बाद कहा—"चीफ इजीनियर बुला रहे हैं। चलिए, आप भी साथ चलिए। अब तो छुट्टी का वक्त हा चला है।"

बँगले पर चीफ इजीनियर और बड साहब कइ मसला पर बातचीत मे मसरूफ हो गए। मैं साइड-सोफासैट पर बैठा चुपचाप कुछ पत्र-पत्रिकाआ के पृष्ठ पलटता रहा।

व उठ ता मैं भी उठ खडा हुआ। अब चीफ इजीनियर ने मेरी तरफ गौर किया। जैसे कुछ याद करते हुए फिर से बडे साहब से मुखातिब हुए—"हाँ भई इनके आदमी का काम हुआ? वाकइ हम इन तीन जना क काम से निहायत खुश है। पिछले पूरे साल म इन तीनो की कान्फिडेशियल रिपोर्ट म 'आउटस्टडिंग' हैं। हमने पिछले साला भी यही पॉलिसी अडॉप्ट की थी कि ऐसे लाग, अपनी मर्जी के आदमियो को, अपने विभाग म लगवा ले।"

"जी हाँ, आज क जमाने मे यह बहुत बडा इनाम है। इससे स्टाफ एन्कॉरिज होता है। बाकी दो ने तो अपने अति निकट सबधिया के पते भी लिखवा दिए हैं।" बडे साहब ने अपनी टाई पर हाथ फेरते हुए उत्तर दिया।

"और इन्हाने भी ता नाम दिया था ना?" चाफ साहब ने मेरी तरफ देखते हुए कहा—"कुछ अजीब-सा नाम लिखवाया था आपने क्या?"

"जी हाँ।" बडे साहब ने उत्तर दिया—"आज डिटेल्ज लेने बैठा था। साहब यह मेमरा काशू इनका कोई रिश्तेदार तो है नही।"

"ओह, मेमरा काशू!" चीफ साहब हल्के-स मुसकराए।

"हाँ साहब, यह कोई नाम भी नहीं। हमारे इन्हीं का डाला हुआ नाम है मेमरा काशू।" बडे साहब ने अपनी हँसी दबाने की काशिश की।

"वाह क्या नाम दिया है मेमरा काशू।" चीफ साहब खुलकर हँसने लगे।

मैं एकदम गभीर और उदास हो गया।

"क्या बात है। अरे क्या हुआ आपका?" शायद चीफ साहब ने मेरे चेहरे के भाव पढ लिय थ।

बडे साहब बाले—"यह कहते हैं कि इन्हीं की वजह से मेमरा काशू पढ नही पाया। मेमरा काशू का नाम आते ही यह उदास, परेशान होने लगते है। यही सब जानने के लिए इन्हे आज अपने साथ ले आया। आज घर पर हमारे कोई ह नहीं। सोचा इन्हीं से गपशप मारी जाए।"

"तो आप लोग हम ही कपनी दीजिए ना! आज हमारी मेम साहब भी आउट ऑफ स्टेशन है। यही सब इतजाम हुआ जाता हे।"

उन्हाने बावर्ची का बुलाया। पहले चाय, फिर कुछ पीने आर खाने की फहरिस्त बता गए।

हम लॉन म थे। बीच म बेत की टेबल। आसपास गार्डन चेयर्स। इत्मीनान और सुकून का माहौल जुटाने म मशगूल। चेफर्ज उठाते। चाय सिप करते। हल्की-बाते। कभी टूटी-फूटी सडकों पर हँसते तो कभी हर किस्म की शहरी कासते। ढिशूँ-ढिशूँ फिल्मो पर तरस खाते। दानो साहब मूड मे थे। मेरी , एकदम मुझ पर काई वजन वाली बात नहीं डाल रहे थे। लेकिन रहा था कि बाकी की सब बाते अपनी जगह मगर असल मे कहीं मेमरा काशू मँडरा रहा है।

अदर पहुँचते ही, चीफ साहब अपने का राक नहीं से-आप निकल पडा—"ओह मेमरा काशू।"

को।" बडे साहब ने एक पैग बनाकर मेरी की तरफ देखने लगे जैसे वही से मेमरा हा।

नीचता की कहानी।" मैं दूसरा पैग गले से पडा—"सुनकर, आप मुझे क्या जलील नजरो मे हा चला हूँ।"

े और मैं भी चुप हो गया।

करता हुआ मैं बाझिल स्वर म धीर-किस्सा—पिछले नवबर ही की बात है। किया था जिसके एवज मे आपने यह एक आदमी का खलासी भरती करवा

तरफ स होना ही चाहिए।" चीफ

भी वायदा किया है कि आप उन्हे कुछ

मैंने किसी कदर सँभलते हुए उसी आकृति से इल्तिजा की—'आप ही थोडी मदद कर दीजिए ना जनाब! मैं किनारे-किनारे पार हो जाऊँगा। आप बाद मे साइकिल पकडा देना।'

'क्या मुफ्त मे?'

'क्या मतलब?' मैं चौंका।

'किराया लगेगा बाबू, किराया! समझे कि नहीं? पूरे पचास रुपए।'

मैं तो जैसे अपने-आपको खदेडे गए पिल्ले की तरह पा रहा था। गुस्से मे चीख पडा—'बडे नीच हो! अच्छा यह तुम्हीं तो हो जो बच्चों से पानी डलवा-डलवाकर मेरी नाक मे दम कर रहे हो।'

'नीच? आह-हा-हो!' वह ऊँचे स्वर मे हँस रहा था—'नीच तुमसे बढकर तो नहीं।' उसने हिकारत से मेरी जानिब देखा और नजर घुमा दी—'पहचाना कि नहीं मुझे?' वह फिर से अपने भयावने चेहरे को तानकर एकदम मेरे सामने खडा हो गया—'तुम्हीं जिम्मेदार हो मेरी इस हालत के लिए, तुम्हीं!'

हैं मैं? यह कैसे? मैं मन ही मन जैसे बुदबुदाया। उसे फिर से गौर से देखा। इतनी बडी उम्र का नहीं है। होगा बस मेरी ही उम्र का। वक्त की मार से मारा हुआ। बेवक्त का बूढा। पहले कहीं देखा हुआ। शायद पिछले किसी जन्म का।

इस बार उसने जैसे जबर्दस्ती साइकिल मेरे हाथ से खींच ली। उसे कीचड और पानी से लथपथ करता गली के उस पार फेंक आया। तब मैं भी दीवार के उभरे हुए हिस्सों को किसी तरह पकडता हुआ किनारे-किनारे, पार आ गया। साइकिल को जमीन पर मारता-झाडता जैसे-तैसे सवार हो बैठा। मेरा दम बुरी तरह से फूल रहा था।

'मेमरा काशू हा-हा-हा!' अजीब-सी हँसी पूरी फिजाँ मे गूँज गई—'तुम्हारा ही दिया हुआ नाम मेमरा काशू हा-हा-हा!'

मैं साइकिल चलाता जाता। सिर्फ कपडों से नहीं बल्कि अंदर तक लथपथ। अपने-आपको मथता गया।

मैंने दोनों कनपटियों को हथेलियों से कसा। मेज की तरफ चेहरा झुका लिया। आवाज जैसे धरती मे समा गई। दोनों ही साहब समझ गए कि कहानी का पूर्वार्द्ध हो गया है।

पाँच-सात मिनट के वक्फे के बाद एक लंबी साँस खींचते हुए मैं फिर से शुरू हो गया।

'सात साल पहले वह मेरे सामने गिडगिडाया था। मैंने उसकी फीस भरने की हामी भरी थी। डेट निकल गई। मैंने कहा—फिक्र न कर यार मेमरा! लेट फीस

अर्से वाद आर्टिजन-स्टाफ म प्रमोट कर दगे।''

''हाँ-हाँ हम सब याद है फिक्र मत करो। वस तुम तो कहते जाओ।''

''हुआ यह था कि एक दिन मैं दिलीपनगर सब-स्टेशन पर अकेला काम कर रहा था। दोपहर को ए० ई० एन० आ गए। काम-काज के पेपर्ज देखते रहे और अगले प्राजेक्ट के वार म वताते रहे। शाम होने का थी। वे जाने लगे तो मुझे अफसोस हुआ कि इस सुनसान-से इलाके म उन्हे चाय तक नहीं पिला सका। सहसा वहीं के एक केजुअल लेवर का सामने पाकर कहा—''क्या भैया, कहीं से चाय का इतजाम नहीं हो सकता?''

''यहाँ तक आते-आते तो ठडी हो जाएगी साहव! उधर ट्रासफार्मर से जरा आगे एक खोखेवाला चाय बना देता है। आप लोग वहीं से पी आइए ना।''

दफ्तर वद हाने का वक्त तो हा ही चला था अत दफ्तर को ताला लगाया। साइकिल निकाली और हम उधर ही चल दिए। चाय पीकर ए० ई० एन० साहव तो जीप से चले गए। मुझे गाँववाला ने घर लिया। सभी जानना चाहते थे कि कब तक गाँव से पानी साफ हो जाएगा। सभी परेशान थे कि यदि जल्दी से पानी नहीं हटा तो उनक कच्चे मकान ढह जाएँगे। मैं उन्हे वडी सहानुभूति से समझाता रहा कि हम पूरी कोशिश कर रह हैं, दिनभर काम कितने जोरा से हाता रहता है! पाँच पम्प ता काम कर ही रहे हैं जल्दी ही तीन आर लगवा दगे आदि-आदि।

इन्हीं बाता मे अँधेरा हो चला था। पानी आने लगा था। पाइप-लाइने टूटी पडी थीं। चारा ही तरफ पानी फैलने लगा था। मैंने साइकिल उठाई और चल दिया। जिस गली से भी गुजरने की कोशिश करूँ पानी ही पानी!

''लाट जाओ वावू! साइकिल पार करना तुम्हारे बस की बात नहीं है।'' एक डरावनी-सी खरखराती आवाज ने मुझे रोक दिया।

मैं दूसरी गली की तरफ मुड गया, जिसके किनारे अपेक्षाकृत कुछ कम पानी था। मैंने वहीं से निकलने की काशिश की मगर फँस गया। लिहाजा भीग गया। आर वापस।

'ऐमे मारे जाओगे वाबू!' वही आवाज सुनाई दी। ऐसी आवाज हर मोड पर। मैं पीछे हटता फिर पार निकलने की कोशिश करता। भीगता। वच्चे मुझ पर पानी डाल-डालकर और परेशान करने लगे थे।

''ऐसे ता तुम मार जाओगे वाबू! आगे गड्ढे ही गड्ढे हैं।''

अव की उस धुँधलके म उस आवाज ही की तरह भयावनी-सी आकृति भी उभरी। पिचक हुए गाल। अट-शट सफेद-काली दाढी। सिर के बाल बुरी तरह से उलझे हुए।

मैंने किसी कदर सँभलते हुए उसी आकृति से इल्तिजा की—'आप ही थोडी मदद कर दीजिए ना जनाब। मैं किनारे-किनारे पार हो जाऊँगा। आप बाद में साइकिल पकडा देना।'

'क्या, मुफ्त में ?'

'क्या मतलब ?' मैं चौंका।

'किराया लगेगा बाबू, किराया। समझे कि नही ? पूरे पचास रुपए।'

मैं तो जैसे अपने-आपको खदेडे गए पिल्ले की तरह पा रहा था। गुस्से मे चीख पडा—'बडे नीच हो। अच्छा यह तुम्ही तो हो जो बच्चो से पानी डलवा-डलवाकर मेरी नाक मे दम कर रहे हो।'

'नीच ? आह-हो-हा।' वह ऊँचे स्वर मे हँस रहा था—'नीच तुमसे बढकर तो नही।' उसने हिकारत से मेरी जानिब देखा और नजर घुमा दी—'पहचाना कि नहीं मुझे ?' वह फिर से अपने भयावने चेहरे को तानकर एकदम मेरे सामने खडा हो गया—'तुम्ही जिम्मेदार हो मेरी इस हालत के लिए, तुम्ही।'

हूँ मैं ? यह कैसे ? मैं मन ही मन जैसे बुदबुदाया। उसे फिर से गौर से देखा। इतनी बडी उम्र का नही है। होगा बस मेरी ही उम्र का। वक्त की मार से मारा हुआ। बेवक्त का बूढा। पहले कहीं देखा हुआ। शायद पिछले किसी जन्म का।

इस बार उसने जैसे जबर्दस्ती साइकिल मेरे हाथ से खींच ली। उसे कीचड और पानी से लथपथ करता गली के उस पार फेंक आया। तब मैं भी दीवार के उभरे हुए हिस्सो को किसी तरह पकडता हुआ, किनारे-किनारे पार आ गया। साइकिल को जमीन पर मारता-झाडता जैसे-तैसे सवार हो बैठा। मेरा दम बुरी तरह से फूल रहा था।

'मेमरा काशू हा-हा-हा।' अजीब-सी हँसी पूरी फिजाँ मे गूँज गई—'तुम्हारा ही दिया हुआ नाम मेमरा काशू हा-हा-हा ।'

मैं साइकिल चलाता जाता। सिर्फ कपडो से नही बल्कि अंदर तक लथपथ। अपने-आपको मथता गया।

मैंने दोनो कनपटियो को हथेलियो से कसा। मेज की तरफ चेहरा झुका लिया। आवाज जैसे धरती मे समा गई। दोनो ही साहब समझ गए कि कहानी का पूर्वार्द्ध हो गया है।

पाँच-सात मिनट के वक्फे के बाद एक लंबी साँस खींचते हुए मैं फिर से शुरू हो गया।

'सात साल पहले वह मेरे सामने गिडगिडाया था। मैंने उसकी फीस भरने की हामी भरी थी। डेट निकल गई। मैंने कहा—फिक्र न कर यार मेमरा। लेट फीस

के साथ जमा करा देंगे तुम्हारा फॉर्म। यारा के होते फिक्र किस बात की। जाकर सो जा। लगातार इतने मीठे आश्वासन इतने मीठे कि वह किसी और से भी सहायता न ले सका। उसके हमेशा बेहद अच्छे नंबर आते थे। हाजिर-जवाब इतना कि उसके कारण मुझे क्लास में नीचा देखना पड़ता था। ईर्ष्या से उसके प्रति दिन-रात जलता रहता था। और कुछ बस न चलता तो 'मेमरा काशू' 'मेमरा काशू' कहकर चिढ़ाया करता

समय गुजरा। मुझे यह अच्छी नौकरी मिल गई। थोड़ा संघर्ष किया। मिसेस को भी नौकरी लग गई। और वक्त गुजरता गया। मैं उस गरीब का असली नाम तो क्या अपने द्वारा मजाक में दिया गया नाम 'मेमरा काशू' तक भी भूल गया।

उस दिन मैं बुरी तरह से व्यथित-उद्वेलित जरूर हुआ था। फिर भूल गया, जैसे भयानक दुर्घटना से बचने के बाद, आदमी उसे भूल जाता है।

भाभी से मैंने वायदा किया कि उनके लड़के यानी अपने भतीजे को इस नौकरी पर लगवा दूँगा। फिर वह आगे निकल जाएगा।

मैं फिर थोड़ा रुका और कुछ सोचता हुआ उन दोनों की ओर देखने लगा—"अच्छा साहब, आप ही मेरे लिए जरा सोचिए और बताइए कि जैसे ही मीटिंग में आपने मुझसे अपने कैंडिडेट का नाम लिखवाने को कहा, क्यों मेरे मुँह से अपने भतीजे का नाम न निकलकर मेमरा काशू निकला?"

"तुम कुछ ज्यादा ही सैंसिटिव हो। लड़कपन में ऐसी घटनाएँ अक्सर हो जाती हैं। जिसे तुम अपना पापबोध समझते हो वैसा है नहीं। वह दरअसल व्यवस्था का शिकार है। तुम्हारा मारा हुआ नहीं है वह मेमरा काशू।" चीफ साहब मुझे तसल्ली दे रहे थे।

बड़े साहब ने कहा—"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। चाहो तो नाम बदलवा सकते हो।" उन्होंने स्वीकृति के लिए चीफ इंजीनियर की तरफ देखा।

इससे पूर्व कि चीफ साहब कोई निर्णय सुनाते, मैं भावावेश में बोलने लगा—"सवाल ही पैदा नहीं होता, नाम बदलने का। यही सही नाम है। पर मेमरा काशू सही नाम नहीं है उसका। उसका सही नाम ठीक पता-ठिकाना मैं पता लगाकर आपको नोट करा दूँगा। इस बीच आप मेरा यहाँ से ट्रांसफर कर दीजिएगा। वह मुझसे ज्यादा योग्य तथा निपुण लड़का था। मैं नहीं चाहता कि वह यहाँ मेरे अधीन काम करे और इस बात का पता भी उसे कतई नहीं चलने दूँगा कि मेरी वजह से उसकी नौकरी लगी है।"

"वैरी गुड वैरी गुड!" चीफ साहब ने गिलास को मेज की सतह से बजाया।

बेयरा बुलाने आ गया था। अदर डाइनिंग टेबल सज चुकी थी।

खाने के दौरान मैं फिर से दुविधा में पड गया। आखिर यह सब होगा कैसे ? मैं दिलीपनगर जाऊँगा। मेमरा काशू से बातचीत करूँगा तो उसे सब रहस्य आखिर पता चलेगा ही कि आज के जमाने मे नौकरी यूँ ही नहीं लगती।

इस स्थिति से भी मुझे इंजीनियर साहब ने उबारा, कहा—"मिस्टर आदर्शवादी आप इस बात की बिल्कुल फिक्र न करे। हमारे पास एक जासूस-टाइप बदा है। वह सब पता लगा लेगा। एक अच्छे स्टेशन पर जगह खाली हुई है। दो-चार रोज म ही आपको वहीं भेज देगे। नहीं तो जहाँ चार पैसे का फायदा होता है, वहाँ के लिए खूब सिफारिशे आने लगती हैं। ठीक ?"

ऑर्डर होते ही मैंने फौरन नए स्टेशन पर ज्वाइन कर लिया। किसी तरह कोशिश कर मिसेस का भी वहीं ट्रासफर करा ले गया।

लगभग चार महीने के बाद मुझे इत्तिला मिली कि अब वैकेंसी फिलअप होनी हैं, लेकिन आपके कैंडिडेट मेमरा काशू की ठीक से शिनाख्त नहीं हो पा रही। इसके लिए आपको स्वय ही कष्ट करना पडेगा। और कोई चारा नहीं है।

दिलीपनगर आने से पहले ही मुझे कई मेमरा काशू नजर आने लगे थे। जिस दिशा मे बढता, उधर ही मेमरा काशू। असमय के बूढे। ऊलजलूल हुलिया। अजीबोगरीब वेशभूषा। दाढी धँसी हुई। मूँछ की नोक किधर को निकली हुई। धूल मे लोटते टूटी दीवारो का सहारा लिये हुए, मेमरा काशू।

दिलीपनगर मे जाकर जिससे भी उसका नाम पूछा वही जवाब देता मेमरा काशू।

मुझे वहाँ वही डरावनी-सी आकृति हर गली के मोड पर दिखती। वही डरावनी-सी या मजाक उडाती हँसी—हा-हा-हा मेमरा काशू। इससे मैं घबरा उठता।

आखिरकार मैं परेशान होकर लौट चला। मैं तो सिर्फ एक ही मेमरा काशू की नौकरी लगवा सकता था।

रास्ता किधर से है?

हमारे गाँव से वास्ता रखते थे ऋषिनाथ। इसी रिश्ते का मैं लाभ उठा लेना चाहता था। हाल ही मे उनका नाम राज्यमंत्री की सूची मे आया था। विभाग की घोषणा होनी थी। उनसे योग्य सेवा पूछ आता। राजनीति की दीक्षा देने को कहता रहता।

उस दिन ऋषिनाथ जी थोडी फुर्सत मे थे। मेरे इसरार पर कहा—"एक लत है यह राजनीति। अच्छे लोगो के लिए बुरी बला। समझे?"

थोडी देर के लिए रुके फिर संस्मरण सुनाने लगे—"तो सुनो। उन्हीं दिनो स्वतंत्र हुए एक छोटे-से द्वीप पैरिया मे मेरी नियुक्ति राजदूत की हैसियत से हुई थी। वहाँ एक हिंदी के विद्वान् थे मि० कैरियूट। यदा-कदा किस्से-कहानियाँ लिखते थे। हिंदी मे बात करते हुए उन्हे अच्छा लगता था। विदेशो की संस्कृति से परिचित होने की लालसा पालते थे।

इन्हीं सब कारणो से मेरे करीब कुछ ज्यादा आने-बैठने लगे थे। एक दिन उनका स्वर ठडा था। ... प्लाटा के अभ ...

मैंने ...

लिया। थोडी

थे। हलक को तर करने में मैं सीमा लाँघन लगा था। उन्होंने मुझे रोकते हुए कहा—'अब छोडिए इसे। आज अपने जीवन–अनुभव की ही कोइ बात सुना डालिए ऋपि जी।'

मै पूरी खुमारी मे उतर चुका था। मि० कैरियूट पर दया–सी आई। उन पर उपकार करने की सूझी। चला आज इन्हे एक बना–बनाया प्लॉट थमा दूँ, एक गिफ्ट की तरह

'ता फिर सुन लीजिए मि० कैरियूट! आज में आपको रास्तो के बारे मे बताऊँगा। आई एम ए सैल्फ–मेड मेन।'

'हाँ–हाँ जरूर बताइए।' मि० केरियूट न हल्की–सी ध्वनि के साथ अपना गिलास मेज पर रख दिया था। आँखा म जिज्ञासा भरी थी। शाम घिर आई थी। में उठ खडा हुआ। खिडकियो–दरवाजा के पर्दे दुरुस्त किए। पहले खडे–खडे एक व्याख्याता की तरह उन्हे समझाने लगा। बाद म निढाल–सा कुर्सी पर पड गया। जबान बरकरार जारी रही—

'रास्ते दुगम स्थलो की ओर जाते हे। पहाडो, बीहड जगला, समुद्रा की गहराइयो, कहीं से भी गुजरने की हममे कुव्वत होनी चाहिए। तभी हम *अपना सही रास्ता* इतिहास म दर्ज करा पाते हैं।'

'बहुत खूब!' मि० कैरियूट मेरे वक्तव्य से अभिभूत हो उठे।

मरा उत्साह बढा, 'मि० कैरियूट! एक उक्ति के अनुसार मनुष्य अपना रास्ता अपने दम स तय करता है यानी पैरो द्वारा चलकर मजिले–मकसूद तक पहुँचता है। मगर दरअसल मै कहना यह चाहता हूँ कि इस तरह से आदमी पहुँचता बहुत कम है लटकता ज्यादा है।'

'हूँ–हूँ, कहते जाइए।'

"तब मैं दम साधे उन्ह एक किस्से की हा तरह अपनी प्रगति–गाथा सुनाने मे मशगूल हो गया था। उसे ही अब तुम्हार लिए फिर से दोहरा रहा हूँ। तुम इसे सुनने के बाद जैसा चाहो निष्कर्ष निकालो और अपने लिए जो वाजिब लगे रास्ता चुना। मेरी बात समझ रहे हो ना, ऐ लडके!"

"ठीक है। आप बस कह डालिए अब।" मैं भी ऋपिनाथ जी से यह सब जानन को उत्सुक हो उठा था। कहानी के माध्यम से जिन्दगी का कोई गूढ राज खुलनेवाला था मेरे सामने जा शायद मेरे लिए सीढी सिद्ध हो।

तब ऋपिनाथ जी ने, जा कुछ भी बताया, वह एक कहानी की ही शक्ल म मेरे सामन उभरता रहा—

"कोइ बडी बात नहीं थी अगर मैं उससे कह देता—फिक्र मत करो दोस्त

तुम्हारा काम हर हालत में हो जाएगा।

बस इतना-भर ही तो कहना था मुझे। इसके बाद कुछ भी न करता, तो भी क्या! ऐसा तो हम लोग दिन में दसों बार कहते ही हैं और लोग प्रायः खुश हो जाते हैं। धन्यवाद या थैंक्स कहते हैं। हाथ जोड़ते, झुकते हुए चले जाते हैं।

परन्तु जोशी मेरा दोस्त था। बचपन का दोस्त। साथ-साथ खेला-पढ़ा हुआ। मेरी नसीहतों पर चला होता तो उसकी ऐसी गति न होती। मेरे सामने एक फरियादी की शक्ल लिये खड़ा न होता। बल्कि मौका लगता तो मुझे ही या किसी को भी उखाड़ फेंकता खैर

कह देता—दोस्त फिक्र मत करो, तुम्हारा काम हर हाल में हो जाएगा। उसका कंधा थपथपा देता। और बदले में दोस्त के मुरझाए हुए चेहरे पर किंचित् चमक के लक्षण तो देख ही सकता था। लेकिन

मैं खुद सुबह से काफी परेशान था। और यह तय है कि मेरी यह परेशानी एक बहुत बड़ी परेशानी थी। एक-दो इन्क्रीमेण्ट्स या इस शहर से उस शहर में तबादला जैसी प्रॉब्लम नहीं थी। ये मामूली प्रॉब्लम्स होती हैं, जो आए दिन मामूली आदमियों के साथ झूलती दिखलाई देती हैं। यही प्रॉब्लम जोशी की थी।

मैं तो जिन्दगी की दौड़ में बहुत आगे पहुँच चुका था। कोई मुझे सुपरसीड करे करने का यत्न करे, मेरे बर्दाश्त से बाहर की चीज है। मेरे अन्दर खून के कतरे उबलने लगते हैं।

उन दिनों ऐसी ही झलक मुझे व्यग्र किए हुए थी। यह झलक उस आदमी से उभर रही थी जो कभी जोशी ही की तरह मेरे इर्द-गिर्द चक्कर काटता दिखाई दिया करता था वही आज सुबह मुझे दर-किनार करता हुआ पिलखुआ रोड की तरफ मुड़ गया था। मेरा ड्राइवर उसे जानता है—आज के सन्दर्भ में भी पहचानता है। कहने लगा—कटिहाल साहब के पर उग आए हैं सर! सुना है उन्हें पार्टी का टिकट मिलने वाला है।

ऊँह कहकर खिड़की से बाहर मुँह निकाल थूक दिया मैंने। पर अन्दर ही अन्दर दाँत पीसकर रह गया। उसी समय से रह-रहकर दाँत पीसे जा रहा हूँ। खा जाऊँ उसे, जिसने मुझे अपने ड्राइवर के सामने छोटा कर दिया

जोशी से कहा 'मिस्टर तुम्हारा काम बहुत मुश्किल है। तुम किससे टक्कर लेने चले हो?'

ऐसा दो टूक जवाब सुनकर जोशी असमंजस में पड़ गया। अपने निचले तिलवाले होंठ को चबाता रहा 'मैं मैं क्यों किसी से टक्कर लेने लगा? आप बड़े आदमी हैं। आप ले सकते हैं। मेरा ट्रांसफर रुकवा सकते हैं। आपका तो पता

है। मेरी पत्नी इसी शहर मे नियुक्त है। कायदे से पति-पत्नी का एक ही जगह रखन का नियम है '

'देखा जोशी,' मैंने उसे बीच मे टोकते हुए समझाया, 'नियम कानून-कायदे धाराएँ-उपधाराएँ, बहुत-कुछ हैं। सब माथा-पच्ची। अपने देश की आबादी इतनी ज्यादा है कि ये गिनती के कानून हर एक को खुश नहीं कर सकते समझे?'

जोशी फिर से निचला तिलवाला होठ चबाने लगा और मैं अपने होठो को कुछ देर के बाद आराम की स्थिति म ले आया।

मुझ जोशी से ही पता चला था कि कटिहाल के ही एक आदमी की खातिर उसे (जोशी को) उखाड़ा जा रहा है। कटिहाल मेरे और जोशी के सम्बन्धों से भी बखूबी वाकिफ है। मैं समझता हूँ यह पृष्ठभूमि कटिहाल ने यही सोचकर तैयार की होगी कि मैं अपने जिगरी दोस्त को बचाने के लिए, उसके पास दौड़ा जाऊँगा। इस तरह मैं ही उसका रास्ता हमवार बना दूँगा। इस तरह वह जोशी को एक मोहरे की तरह इस्तेमाल करने म कामयाब हो जाएगा।

तब मैं भी आप-से-आप, जोशी को उसी यानी कटिहाल के अन्दाज से देखने लगा था। अपनी दोस्ती-सहित उसके तमाम सामाजिक-पारिवारिक रिश्तो से अलग जोशी की नई सूरत—सपाट और गाल—झलकने लगी थी, जिसे मैं भी इस्तेमाल कर सकता था।

इस समय यदि मैं भावुक हो उठता तो बचपन की दोस्ती को अहमियत देता अतीत के सपनो का ताना-बाना बुनता सोचता—बचपन की रंगीनियो से सिर्फ दोस्त ही तो दो पलो म हमारा साक्षात्कार करा सकते हैं। यह सामर्थ्य किसी और म नहीं होता।

इस सोच-प्रक्रिया में मेरा और जोशी का सवेदना-ससार तो चमकने लगता, लेकिन मैं खुद अपने कर्म-क्षेत्र मे पिट जाता। एक गोटी की मानिंद।

जोशी अब भी अपने निचले तिलवाले होठ को चबाए जा रहा था। इससे थोड़ी चपचप उभरने लगी थी। मैंने कहा—'देखो जोशी, मैं तुम्हे इस वक्त कोई कच्चा-पक्का आश्वासन नहीं देना चाहता। मेहनत करना इन्सान का फर्ज है। मेहनत हम करेगे। तुम भी करोगे, तुम्हारी पत्नी भी। कल इसी समय उसे भी लेकर आओ।'

जोशी उठ खड़ा हुआ। जाते-जाते कुछ पूछने के लिए फिर से खड़ा हो गया। क्या कैसे पूछे? असमजस म पड़ गया।

म मुसकरा दिया। एक खास रास्ता मेरे दिमाग मे विस्तार लेने लगा था जो

जाता तो पचायत-मत्री की ही हवेली को था लेकिन *आम रास्ता नहीं* की तख्ती टाँगे हुए था। इस रास्ते से केवल मेरे-जैसे लोग ही गुजर सकते हैं।

इस रास्ते के विषय में जोशी का हल्का-सा सकेत किया था कि वक्त आने पर तमाम रास्तो का उल्लघन हो जाता है तो जोशी अपने होठ के तिल को अनामिका से छूने लगा था जैसे दर्शनशास्त्र के किसी गूढ प्रश्न में डूबने लगा हो।

'अभी नहीं समझोगे। कल इसी वक्त फिर बात होगी। भाभीजी भी आएँगी।'

जोशी चला गया।

पत्नी सामने आकर खडी हो गई नैतिक शास्त्र का पोथा थामे--'सब सुन रही थी मैं। चुटकी-भर का काम और पहाडो की यात्राएँ करा रहे हो उस बेचारे से। अगर मानो तो दोस्त से बढकर कोई दूसरा जिगर का टुकडा नहीं होता।'

'सुनो मैडम! औरतें सजग होती हैं समझ रखती है। परन्तु जब उनमें अधिक सद्भावना जागृत हो जाती है तो वही औरत नादान हो जाती हैं। तुम उन औरतों की तरह मत सोचो। बात दिनों की न होकर चुटकियों की हो जाएगी। जोशी के कस की परिधि सिमटकर मेरी ही तो मुट्ठी में आनेवाली है। तब मुझमें सामर्थ्य होगी। जोशी से यह नहीं कहूँगा--दोस्त तुम्हारा काम हो जाएगा, बल्कि कह सकूँगा--लो दोस्त तुम्हारा काम हो गया।'

पत्नी मुँह सिकोडते हुए मेरे सामने से हट गई। मैं अपने ही चेहरे की मुसकान में खो गया।

दूसरे रोज सुबह से ही घनघोर बादल छा गए थे। आसमान का रग काला बदरग हो गया था। शाम होते-होते बादलों ने धरती को पूरी तरह बेढगा बना दिया था।

आना ही था जोशी को। पत्नी को लेकर आया। दोनों हो कीचड-रगे कपडों को झाडते हुए गैरेज के कोने में खडे दिखाई दिए थे।

कुछ देर तक ड्राइगरूम के बडे शीशे से उन्हें न देख पानेवाला कोण बनाए रहा। जूते-चप्पल बजने की ध्वनि बार-बार सुनाई देने लगी।

तब मैंने जैसे चौंककर सिर घुमा दिया 'आह जोशी! अरे भाभीजी आप! बडी कृपा की। किसी बहाने धन्य तो किया! खडे क्यों हैं ? सीधे चले आइए ना! कोच-कालीन का कुछ नहीं बिगडना।'

चाय के लिए आवाज लगाई। चाय लेकर स्वय मेरी पत्नी आई। प्रेमपूर्वक चाय चलती रही। दोनों महिलाएँ स्वभावानुकूल अधिक घनिष्ठ होने लगी तो मैंने

पत्नी का टोका 'याद म खूब बात करती रहना पहल जरा '

पत्नी ड्राइगरूम से बाहर चली गई।

मैंने अपने-आपको पूरी तरह मोडा 'अब आप कहिए भाभीजी आपके स्कूल म ओर भी ता ऐसे केस हाग जिनक हस्बेड्स को जबरदस्ती बाहर भेज दिया गया है या व अडर ट्रासफर-ऑर्डर हैं। पति या पत्नी काइ भी हो सकता है।'

'हाँ ह। झूठ क्या बालूँ ? हमारा पहला केस ता नहीं है यह '

'हूँ ।'

मेरे इस लम्बे 'हूँ' से वह बेचारी अटककर रह गई कि जसे म उन्हे अब दा-टूक जवाब द दूँगा—ता इस केस मे ज्यादा दम नही, क्याकि ऐसा औरा के साथ भी हुआ ह। प्रक्टिस इज ए हाफ रूल।

थाडी चुप्पी के बाद मैंने मित्राचित स्वर उभारा, 'भाभीजी, आप घबराइए नही। याद कीजिए एसे कितने केस हैं या हो सकते है ? या कुछ एसे कपल भी ता हा सकते हैं जा तबादले क भय-तले जी रहे हैं ?'

श्रीमती जाशी ने साचते हुए धीरे-से कहा 'चार-पाँच '

'चार-पाँच स काम नहीं चलगा भाभीजा वल्कि आपको घूम-घूमकर पूछ-पूछकर सभी विभागा क ऐसे खूब सारे लागा का इकट्ठा करना हागा। तभी वात बनेगी। बची-खुची कसर हम पूरी करगे। जाशी यही काम तुम्हे भी करना है। भाभीजी की मदद करनी है। इससे गलत नियमा की दलदल म फँसे तमाम लागा का भला होगा।'

'सभी अपना-अपना रास्ता निकालते ह भाइ साहव! कुछ दे-दिलाकर कुछ वडे लागा से मिलकर।'

'यही ठीक है। यही हाता है। मैं काई बडा आदमी नहीं हूँ। पर इतना जानता हूँ कि सगठन म ताकत हाती है। यहा मेरा विश्वास है। यदि वे सब मिलकर मेरे पास आएँगे ता सबका काम आसान हा जाएगा। इस तरह मिलकर व मेरी मदद करगे।'

एक-एक प्याला चाय, बर्फी नमकीन फिर से साथ-साथ लिया। उन दाना का अपनी कार से घर छोड आया। सपक वनाए रहा।

पाँच-सात राज गुजरे थे। पचायत-मत्री का घेराव हुआ। नारेबाजी। नाद-हराम आन्दालन आए दिन यह सिलसिला वढने लगा।

पुलिस जाती लाट आती। मैं पुलिस-समेत हर छोटे-बड महकमा मे आता-जाता रहा। अखबारवाला का बुलाता रहा। अहिंसक आन्दालन गाधीजी का देन ह। नागरिका क अधिकारा पर लाठी-प्रहार न हा।

मगर कब तक? आखिर तो यह होना ही था। दो लाशें उठीं। सुना, एक औरत की थी। वही सबसे आगे बढ-चढकर बडे उत्साह से आन्दोलन में भाग ले रही थी। फिर पता चला—श्रीमती जोशी थी। ओह

बदनामी के इश्तहार। ऊपर से कई तरह के दबाव। आन्दोलन की अधिक व्यापकता का डर। जबान लडखडा गई मंत्रीजी की।

किसी तरह जैसे पिंजरे से निकलकर मेरे पास पहुँचे। मौसम से शुरू हुए। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय मसला तक पहुँचे। बीच-बीच में अपने-मेरे निजी रिश्ता का बखान। पंचायती राज पर भाषण, जो उन्हें एक बहुत बडी सभा मे देना था और प्रस्तुत आन्दोलन की वजह से रुका पडा था। पंचायती कार्य-प्रणाली मे हर मंत्री का बेवजह हस्तक्षेप का रोना। यदि कार्यकर्त्ताओं के पारिवारिक जीवन मे विघ्न पडते रहे तो कार्यकुशलता आएगी कहाँ से?

वृत्तान्त बढता जा रहा था। मैं उनके स्वर मे स्वर मिलाए रहा। सहानुभूति दर्शाता रहा—'इतने बडे कार्यक्षेत्र मे कुछ न कुछ गलत या चूक तो होती ही है इसमें आपका क्या दोष?'

जाते-जाते बोले, 'आपके पास इतना समय कहाँ है। ऊपर से फालतू लोग आ-आकर माथा चाटते रहते हैं। कटिहाल को ही देखो। रात-दिन आकर जमा रहता है। सोचता हूँ तुम्हारी बजाय जैसे मैं उसे ही टिकट दिला दूँगा। हुँह!'

मैं गेट से लौटा तो मन ही मन मुसकरा उठा। जोशी का पता चला। चुपचाप अपने-आपको उसी दूर-दराज के इलाके में घसीट ले गया। मुझे फुर्सत नहीं थी। इलेक्शन सिर पर था। तब से मेरी पत्नी अकसर गाँव रहने लगी है मेरे ऐसे कर्मों तथा मेरी भाग-दौड से तंग आकर।

मैं चुनाव जीत गया था। देखा आपने मि० कैरियूट? पैरों की बजाय रास्ता दिमाग से तय किया जाना चाहिए। खुद अपने शरीर को घिसा-घिसाकर रास्ता बनाने की बजाय दूसरों से अपने लिए रास्ता बनवाना चाहिए। यही करिश्मा है। क्या?

हुंकार नहीं मिली। पता नहीं कितनी देर से नहीं मिली थी। सिर उठाया। देखा—मि० कैरियूट जा चुके थे न जाने कब से। कुर्सी खाली थी।

इसके बाद मैं पैरिया द्वीप मे कम से कम सवा साल और रहा। मि० कैरियूट मुझे नहीं दिखे। दिखने पर भी अनदिखे हो गए वे।

किस्सा पूरा कर पहले फणिनाथजी ने भरपूर अँगडाई ली फिर माथा पकडकर बैठ गए, थका-उदास चेहरा लिये।

मैंने तत्काल प्रतिक्रिया व्यक्त की ''आपको क्या परवाह एक कैरियूट की।

अब तो सैकडा-हजारो की तादाद मे लोग आपको घेरे रहते हैं।'' मैंने उन्हे उबारना चाहा।

''ठीक है, मगर इस सब के बावजूद कभी-कभी ऐसा हो जाता है। बहुत बडी भीड म से अचानक एक चेहरा उभरता है। सारी भीड धराशायी हो जाती है। अकेला मि० कैरियूट मुसकरा रहा होता है।''

टेलीफोन की घटी बजी। वे अन्दर चले गए। मे उठ आया। रास्ता तलाश रहा था। मेरी नियति कैरियूट जैसी हो नहीं सकती थी। मुझे ऋषिनाथ बनना था या फिर जाशी-जैसी जिन्दगी जीनी थी।

●

पुनरागमन

इस सफर के 'बाद' वह नहीं, बल्कि 'वही नेकीराम' अपने पूरे वजूद के साथ मुझे कुछ-कुछ वक्फे के बाद दिखलाई दे जाता है जैसा कि उस कहानी म वर्णित था—लबा-पतला शरीर, लबा सफेद या भूरा कुर्ता-पायजामा पहने, पीछे का कढे पतले खिचडी बाल, चहरे पर झुर्रियाँ आँखा म अनाखी चमक के साथ-साथ कहीं उपेक्षित हाने की टीस भीड-भरी सडको पर या सुनसान डगर पर गली-कूचा मे या किसी छोटे-बडे घर या मदिर म प्रवेश करते-निकलते।

मेरा खयाल है अगर आप थाडा गौर करे ता मेरी तरह आपका भी 'वही नेकीराम' अपने आसपास जरूर दिखाई दे जाएगा भले ही उस कहानी मे वर्णित कदबुत-वेशभूषा मे कुछ अतर हा।

लबा सफर हा बर्थ रिजव हा आर साथ म एक-दा सुरुचिपूर्ण किताबे हा ता अकेले सफर का मजा ही कुछ अलग हाता है। ठीक ढग से कुछ सोचने का अवसर मिलता है। खिडकी स बाहर खत-खलिहान पेड-पोधे पशु-पक्षी सभी मिलकर सुप्त भावनाआ का जागृत कर देते हैं।

शाम इलाहाबाद से गाडी म बेठते समय चार्ट देख लिया था। मेरेवाले कूपे मे

कटनी से कोई नकीराम नाम के शख्स चढगे। मन म वितृष्णा लिये हुए फालतू-सा विचार उभरा—नेकीराम और फर्स्टक्लास! फिर सोचा—कोई हो, तब तक आधी रात बीत चुकी होगी। किताब पढते-पढते म सो चुका हूँगा। बस थाडा दरवाजा खोलने का झझट होगा। चिटखनी खोलकर में फिर से सो जाऊँगा। आगे वह नकीराम नाम का यात्री सब सँभाल लेगा। सुबह नेकीराम इटारसी स्टेशन पर उतर लेगा अपने रास्ते और मैं अपने रास्ते बढता रहूँगा।

यह गर्मिया का मौसम था। अधखुली खिडकिया से ठण्डी-ठण्डी हवा आ रही थी। मेरी नींद मे बैंड-बाजे की लबी ताना से खलल पडा जो लगातार मेरे खयाल से बहुत देर तक गाडी की रवानगी तक पडता रहा। दस्तक होने से पहले ही दरवाजा खोल दिया। पहले, दो अर्दली अदर सामान रख गए। बाद मे हाथो मे बहुत-से हार सहेजे नेकीरामजी ने प्रवेश किया। जाहिर था कि यह पतली-लम्बी कद-काठी के नेकीरामजी फौज के कोई आला अफसर थे। पर मेरे सामने कोई कुछ भी हो।

नींद उड चुकी थी। मैं दुबारा किताब खोलकर बैठ गया। गाडी गति पकड चुकी थी। वे अपना सामान और ऊपर की बर्थ पर लगे बिस्तर को दुरुस्त करने लगे। फिर सहसा मेरी बगल म थोडे फासले पर बैठ गए।

हो सकता है मेरे चेहरे पर खीज का भाव कुछ ज्यादा ही उभर आया हो, या वैसे ही औपचारिकतावश व बोले—"मॉफ कीजिएगा मेरी वजह से आप डिस्टब हुए।"

मैने थोडा सीधे ही कहना उचित समझा—"कोई बात नहीं। रस्मोरिवाज का तो निभाना ही पडता है। देवी की चौकी, जागरण जैसे जश्नो पर कौन किसी की नींद का ध्यान रखता है! फिर चाहे अनपढो की श्रेणी हो या पढे-लिखो की, क्या फर्क पडता है नेकीरामजी।"

मेरी आवाज म चोखलाहट और व्यग्य दोनो थे। खासतौर से 'नकीराम' को लेकर। पता नहीं क्या, मै अपने सामने सबको उपेक्षित किए रहता हूँ। भीड मे से अपने को छाँटकर अलग कर लेने की कला म माहिर हूँ। मुझे ज्यादा बोलनवालो स चिढ ह।

उन्होने जैसे सब-कुछ समझते हुए कहा—"जीवन मे बहुत-कुछ ऐसा है जिसे हम बदल नही सकते। यहाँ मेरा आशय विशेष रूप से नाम से है।"

"क्या-क्यों?" मै सचमुच उनके ओर बोलने से चिढ गया था।

उन्होने ब्रीफ्केस खोला एक पत्रिका निकाली। उसी शात तथा कुछ अलसाए स्वर मे कहा—"आप कुछ देर के लिए अपनी पुस्तक मुझे दे दीजिए

और इस पत्रिका की यह कहानी पढ आइए।" उन्होंने इंगित करते हुए मेरी ओर पत्रिका बढाइ।

मैंने उसी असतुलित अवस्था मे उनके हाथ स पत्रिका खींच ली—'तो ऐसा ही सही' वाले भाव के साथ कि चलो इस प्रकार बातचीत से पिण्ड छूटेगा।

कहानी का शीर्षक था 'फिर से'। लेखक का नाम नही था। सोचा—शायद अत म होगा। मैंने कहानी पढनी शुरू की और बँधता चला गया। कहानी का सार-सक्षेप कुछ इस प्रकार था—

वशी और अनिता सवेर बहुत देर तक रजाई म पडे रहे थे—फुसफुसाते हँसते खुशी जाहिर करते आपस मे लिपटते। एक दूसरे को शादी की सालगिरह की मुबारकबाद दे रह थे। 'ये दिन बार-बार आए' जैसे औपचारिक वाक्यो से किसी अज्ञात रिक्तता को ढक रहे हो।

दिसबर क आखिरी दिन थ। ठण्ड पूरे जोरो पर थी। आज उनकी शादी की सातवी सालगिरह आ पहुँची थी। सातवीं ?

आदमी कभी-कभी चौंक पडता है। फिर अँगडाई लेता हुआ जैसे अपने से ही सवाल करता है—"क्या सचमुच इतना अरसा बीत गया है ?"

सोचते-सोचते वशी बतियाने लगा—"अनिता! लगता है, जैसे कल ही की बात हो। आज ही क दिन हमारी शादी हुई थी। कितनी रौनक थी हमारी शादी पर! दूर-दूर तक क तमाम रिश्तेदार दोस्त शादी मे शरीक हुए थे। उन दिनो मास्टर नेकीराम बगाल के किसी दूर-दराज क इलाक मे नौकरी कर रहे थे। वह भी आ पहुँचे। पिताजी ने धन्यवाद कहा तो बोले—'आता कैसे नहीं ? वशी तो मेर लडक स भी बढकर है। मुझे याद है ' कहते-कहते व हँस थे और पिताजी की पीठ पर धौल जमा दिया था। यह उनकी शुरू की ही आदत है और आज तक "

पति को बीच मे टोकते हुए अनिता कुछ तिलमिलाए स्वर म बोली—"सुबह-सुबह फिर उसी बूढे की चर्चा छेड बैठे।"

"शुरू से ही वे हमारे घर के सदस्य की तरह रहे हैं।"

अनिता ने फिर टोका—"रहे होगे। कई बार सुन चुकी। पर मुझे तो जरा भी नहीं भाते। पोपले गाल, टूटे हुए दाँत मुँह से निकलती झाग। जब देखो बिना आवाज-खटके के लम्बा झोला लटकाए चल आते हैं—एक खिलौना तो चाहिए ही।" कहते-कहते अनिता के मुखमडल पर अवसाद की रेखाएँ खिंच गईं। फिर यत्नपूवक उन रेखाओ को हटाती हुई लापरवाही से ही हँस दी—ऊँह।

"अजी छोडो यह सब!" वशी का लहजा भी लगभग वैसा ही था जैसा 'दिल खराब करनेवाली बाता' को आदमी दूर फकने के लिए निकालता है।

"अब उठा और तैयार हा जाओ!" यही एक वाक्य दाना ने एक-दूसरे से पाँच-सात बार कहा। एक-दूसरे का कसते रहे और आखिर बडी मुश्किल से एक-दूसरे से अलग हुए।

अब अनिता ने एक दूसरा शगूफा छड दिया—"यह तो कोई बात न हुई कि आपको दफ्तर से छुट्टी नहीं मिली। सालभर म एक ही दिन आता है। पिछले साल भी छब्बीस दिसबर की छुट्टी कहाँ मिली थी।"

"तुम्हारी ता मौज रहती है, तुम्हारे कॉलेजवाले इन दिना बडे दिनो की छुट्टियाँ कर देते हैं, पर हमारे यहाँ इन्हीं दिना, समझो साल के अतिम दिना काम की जैस याद आ जाती है। पर सबने कह रखा है—साहब, आप तो जरूरी-जरूरी कागजा पर साइन करके चले जाइएगा, बाकी हम सब सँभाल लेगे। सभी को शाम का पार्टी भी तो मिलनेवाली है!"

"ठीक है, जल्दी आना!"

"तुम तैयार होकर बैठना। मेरे आते ही चल दगे। शॉपिंग करगे। साथ-साथ फोटो खिंचवाएँगे। पार्टी मे खाने-पीने की तमाम चीजो का ऑर्डर देते आएँगे। तुम्हे कुछ ज्यादा काम करना पडा ता कहोगी—थक गइ।"

दुपहर साढे ग्यारह का समय था। अनिता अपने घर के चोडे आँगन मे एक चारपाई पर बैठी थी। खुले आकाश से बादला से छन-छनकर धूप अनिता तक पहुँच रही थी। वह शोख लाल रग की साडी पहने हुए थी और इसी रग के धागे से आसमानी रग के रूमाल पर कढाई कर रही थी।

लगभग अपने बताए समय पर ही वशी आ पहुँचा और बाला—"ला डार्लिंग, अब सिर्फ तुम्हारी ही हाजरी मे।"

उत्तर मे अनिता ने *थैंक्यू* बोला। फिर वशी की तरफ रूमाल बढा दिया।

"वाह! खूब! वशी वशी वशी वशी।" वशी ने रूमाल परखते हुए उत्साह से कहा। चारो कोनो मे बडे कलात्मक ढग से छोटा-छोटा *वशी* अकित था।

थोडा रुककर वह फिर बाला—"मजा आ गया! आज धूप भी कितनी उजली-उजली खिली है!"

"पर ये बादलो के टुकडे रह-रहकर सब गडबड कर देते हैं। मक्खियाँ भिनभिनाने लगती हैं!" कहते-कहते अनिता ने मुँह दूसरी ओर मोड लिया।

"तुम तो जरा-जरा-सी बात पर परेशान हा उठती हो। वैसे सब ठीक तो है ना?" वशी ने पत्नी क हाव-भाव की ओर लक्ष्य किया।

''हाँ आपके चाचा नेकीराम जी आए थे।''

''चाय-वाय तो पिलाई थी ?''

''पूछा तो बोले रहने दो बेटी। शाम को ही एक बार पिऊँगा। चला जान छूटी। यह फूलों का गुलदस्ता रख गए।''

वशी ने देखा—सामने एक कोने मे ताजे फूलों का एक गुलदस्ता उपेक्षित-सा पडा हुआ है। वह अनिता की मन स्थिति को समझता था इसलिए उसने इस विषय में और कोई बात नही की।

दोनो बाजार गए। एक अच्छे होटल मे खाना खाया। एक-दूसरे के लिए उपहार खरीदे। योजनानुसार शाम की पार्टी के लिए ऑर्डर देते हुए वापस घर पहुँच गए और मेहमानो के स्वागत की तैयारी करने लगे।

शाम से रात तक दावत चलती रही। गाना-बजाना भी हुआ। बधाई देने वालों का ताँता बँधा रहा। कुल मिलाकर सब-कुछ उत्साहवर्धक। प्राय सभी लोग आए थे। नहीं आए तो मास्टर नेकीराम। इससे अनिता ने चैन की साँस ली।

इससे अगले दिन की बात है। शाम को दफ्तर की ड्यूटी निपटाकर वशी पूरे उत्साह से भर पहुँचता है। अभी तक कल शाम की पार्टी की मीठी याद मन-मस्तिष्क को तरंगित किए हुए है। वह सब बातें जल्द से जल्द अनिता के पास बैठकर दोहराना चाहता है। और आज उस पार्टी को लेकर दफ्तर में जो प्रतिक्रियाएँ हुईं वह भी बताना चाहता है। परन्तु देखता है, अनिता पलँग पर मुँह औंधा किए लेटी है—अवसादग्रस्त। वशी घबरा जाता है।

बार-बार पूछने पर अनिता बहुत धीमे परन्तु चुभनेवाले स्वर में कहती है—''उन्हें रोकिए प्लीज। अब मुझसे नहीं सहा जाता।''

वशी एकाएक कुछ नहीं समझ पाता। सिर्फ सुनने-समझने की चेष्टा में अनिता की ओर देखता रहता है। उसकी पीठ थपथपाता है।

थोडा रुककर अनिता एक लकडी का गुड्डा उठा लाती है।

''आज तो हद हो गई। यह देखिए अपने मास्टर साहब की करतूत। वही पुरानी रट—घर मे एक खिलौना तो होना ही

वह अपना माथा पकडकर बैठ जाती है।

वशी गौर करता है। बहुत ही खूबसूरत खिलौना जैसे सचमुच का बच्चा चेहरे पर को ही निहार रहा है। कुछ

से अनिता की ओर देखते

वह अनिता को आश्वस्त करता ह—"इसम बुरा मानने का क्या है। बड-बूढे आदमी ठहर। अपने मन की भावनाएँ व्यक्त कर देते हें।"

"ह भगवान, भूलते भी ता नहीं।" अनिता के स्वर मे पूववत् चिडचिडापन ह। हर साल उन्ह हमारी मरिज-एनिवसरी को तारीख याद रहती ह। कहन लग—कल शाम खाँसी का दारा बहुत बुरी तरह से उठा इसलिए नहीं आ पाया। साचा आज ही बिटिया का बधाइ दे आऊँ। अहं!"

वशी ने तत्काल काई उत्तर नही दिया था। वह गहरी साच म डूबा रहा था। रात का उसने खिलोना अपनी स्टडी म रखा ता अनिता न देख लिया। बाला—"हाँ यही जँचता ह।"

उसे किंचित् शात दखकर वशी न कहा—"जरा साचा आज क जमान म भला कौन याद रखता है किसी का जन्मदिन या मरिज-डे! सबका बार-बार न्याता देना पडता ह।"

सुनकर अनिता फिर से थाडा-थाडा खीजन लगी—"ह तो विरोधाभास! जिसे हम नहीं चाह वही आ टपके! जब-तब कभी भी झाला लटकाए चल आत हैं—ला बटी तुम्हारे लिए केले लाया हूँ, सिघाडे लाया हूँ। चला काइ बात नही। मगर यह क्या बात हुई—एक खिलौना तो होना ही चाहिए!"

"बूढे आदमी हैं। मन म माह ह। अपना समझकर चले आते हें। एक कप चाय ही ता पी जाते हैं। असीम दे जात हें।"

"नहीं चाहिए मुझे उनकी एसी असीस। नहीं चाहिए मुझे औलाद। कइ बार ता उनका स्पष्ट बता चुका। आजकल की महँगाइ में बच्चे पालना आसान काम नही। फालतू का झझट!"

वशी बोला—"पुरान आदमी पुराने विचार। मुझसे भी कहते ह—घर म फुलवारी खिलनी चाहिए। तब मैंने उन्हे एक बार बताया था कि हम दानों न ही दा-तीन बार डॉक्टरी जाँच करा ली है। सब ठीक ह। बाल—अच्छा! ता फिर कुछ और यत्न-उपाय करो। मैं समझ गया यज्ञ-व्रत आदि की बात करना चाहत हैं। मैं टाल गया। पर इसम बुरा मानने की क्या जरूरत है।"

"पता नही" अनिता तेश मे बोली—"इस बूढे का हमारी इतनी फिक्र क्या खाए जाती है। हमे नहीं, इसे ही औलाद चाहिए। मैं किसी दिन साफ कह दूँगी—अपने काम से काम रखे। आफ्फ आज ता हद ही कर दी। यह खिलौना ही ला पटका। कहने लगे—इसका असर हागा। मैं अपने कुलदेवता से प्रार्थना करूँगा।"

वशी बाला—"तुम कुछ भी कह-समझ सकती हा पर पुराने लोगा के अपने विश्वास अडिग हाते ह। एक बार मैं बीमार पडा था। जीवन की आशा प्राय

क्षीण हा चली थी। माँ रोती। हर राज यही चाचा आते। परिवार का ढाडस बँधाते—कुछ नहीं हागा इसे। जवान म विश्वास भरा होता। वहीं मेरी चारपाई क निकट पालथी मारकर बैठे रहते। अपने कुलदेवता से मेरे जीवन की दुआएँ माँगते। मैं भला-चगा हा उठ बैठा। माता-पिताजी, इसके अतिरिक्त, और भी इनके कितन एहसान मानते।"

"मैं ऐसी बात नहीं मानती। मुझसे और बरदाश्त नहीं होता। उन्हे रोकिए। मत आया कर।"

"मैं ऐसा नहीं कह सकता।"

"आप नहीं कहगे ता मैं ही कह दूँगी।"

वशी प्रार्थना के स्वर मे बाला—"ऐसा कुछ मत कहना कि उस देवता को भावनाआ को ठेस लगे।"

परन्तु नहीं। अनिता नहीं मानी।

कुछ दिनों बाद की बात है। उसकी कमर बुरी तरह से दुख रही थी। पेडू मे भी दद था। उसी शाम मास्टर नेकीराम अपनी चिरपरिचित मुद्रा म आ उपस्थित हए। स्वय ही एक मूढा खीचकर बहू की चारपाई के निकट जा बैठे—"ठीक हो जाओगी बेटी। चिन्ता मत किया करो। मेरी दुआ असर लाएगी। जल्दी ही एक फूल ता होना ही चाहिए।"

"नहीं मुझे नहीं चाहिए।" अनिता गर्म हो उठी।

चाचा बुरा न माने इसलिए वशी ने कहा—"इसकी तबीयत जरा ढीली है। मैं आपके लिए चाय बनाकर लाता हूँ।"

रसाइघर से वशी का अनिता का कर्कश स्वर सुनाई दिया—"आप आप क्या चले आते हैं यहाँ ? मुझे आपकी दुआ नहीं चाहिए। मैं मैं आपके कुलदेवता को नहा मानती।"

"ऐसा नही कहते बेटी।" चाचा उसी शात स्वर मे अनिता को तसल्ली देने की चेष्टा कर रहे थे—"हमारे कुलदेवता हर एक पर कृपा करते हैं।"

"आपके मुँह से झाग आती रहती है—क्या कुलदेवता को घिन न आती हागी ? आगे से आप यहाँ मत आया कीजिए।"

"अच्छा बेटी। जैसी तुम्हारी इच्छा। सुखी रहा।"

सब बात सुनता हुआ वशी जब तक चाय की ट्रे लेकर आया मास्टर नकीराम चल दिए थे। शमसार वशी की सारी हिम्मत पस्त पड चुकी थी कि उन्हे वापस बुला सके मनाकर लौटा लाए।

पत्नी का मन ही मन कोसने के अलावा कोई चारा नहीं था। भला कौन किसी का बदल सका है! ऐसे मे किसी के पास कोई रास्ता या तजवीज बाकी नहीं बचती। सब मुकद्दर के खेल हैं, जिन्हे बदला या पलटा नहीं जा सकता।

सारी रात इन्हीं खयालो म वशी अधमुँदी आँखो से मास्टर नेकीराम का सहज निश्छल साथ ही अपमानित लटका हुआ चेहरा देखता रहा।

कुछ रोज तक तो पति-पत्नी मे अबोलापन बना रहा। वशी सोचता था कि अपने-आप अनिता को पश्चात्ताप होगा। तब दोनो जाकर उस देवतुल्य बूढे से क्षमायाचना करगे। लेकिन बाद म भी अनिता टस स मस न हुइ। उसके अनुसार अच्छा हुआ। वे हमेशा हमारे जख्मो को कुरेदते रहे हैं। अब उस बूढे की मनहूस शक्ल न दीखेगी।

वशी बार-बार अपने प्रयासो म विफल और दु खी होता रहा।

अगली शादी की सालगिरह से पहले वशी-अनिता सचमुच का हँसता-खेलता खिलौना पा गए थे। पडित/ज्योतिषी ने छब्बीस दिसबर से पूर्व बच्चे का कोइ भी रीति-विधान वर्जित बताया।

नव शिशु के आने की सूचना बस आसपास के थोडे-से परिचितो को थी। शादी के पौने आठ साल के बाद, घर फूल-से बच्चे की मीठी सुगध से महकने लगा। दोनो को ही जीवन म पहली बार अपनी आतरिक स्फूर्ति का अहसास हुआ। हर समय व दोनो जैस अपन को हवा म उडत हुए पाते।

दोनो ने मिलकर तय किया कि इस वर्ष शादी की सालगिरह खूब बढ-चढकर मनाइ जाए और उसी दिन सुबह के वक्त बच्चे के नामकरण-सस्कार का आयोजन रखा जाए।

अब छब्बीस तारीख आन मे बहुत दिन बाकी नहीं थे। अत बहुत जोर-शोर से दोनो ही कार्यक्रमो की तैयारियाँ होने लगीं। निमत्रणपत्र छपवाए गए और तुरन्त बाँटे जाने लगे।

परन्तु न जाने क्या, अनिता को लगता कि उत्साह की इस अद्भुत तरग को आरभ से ही बीच-बीच म आकर कोई अव्यक्त-सा अवरोधक छिन्न-भिन्न कर जाता है।

तभी एक दिन उसके मन म चाचा नेकीराम का सौम्य चित्र कौंध गया। तदुपरात वह जब-तब चाचा के विषय मे विचारने लगी। क्या इतने भव्य समारोह के अवसर पर वे नहीं आएँगे? पता तो उन्ह चल ही चुका होगा। वे तो हमारे घर की हर गतिविधि को दूर से ही सूँघ लेत हैं। पर क्या आएँगे वे? क्या बूढे आदमी को

कोइ आत्मसम्मान नहा हाता ? घर का कोई-सा दरवाजा जरा-सा भी बजता ता वह उधर ही को भागन की चेष्टा करती। उसने कई बार साचा कि किसी प्रकार उन तक सूचना पहुँचाइ जाए। परन्तु कैसे ? पति से कहना चाहा, पर हिम्मत नहीं पडी। साचा—हा न हो मुझस छिपाकर वशी उन्ह निमत्रण द आए हाग और वह उसी प्रकार अपने कधे पर झाला लटकाए सहज पापली मुसकान बिखरते प्रकट हा जाएँगे—ला आ गया ना खिलोना! मैं कहता ना था! लेकिन यह कैसे सभव है ? वशी म वह साहस कहाँ कि मुझे बिना विश्वास म लिय उन्हे बुला लाएँ।

ता भी क्या वह उदारमना महापुरुष हमारी भूल-चूक माफ कर जरूर किसी दिन आकर हमे सरप्राइज दगे और हम दाना झट से उनके पाँव छूने दाड पडगे।

हर दिन इसी प्रकार की आशा से शुरू हाता और बेताबी-भरे इतजार मे खत्म हाता रहा। नेकाराम नहीं आए ता नही आए। पर नहीं चाचा का ता हर सूरत म आना ही चाहिए। हम न सही इस नन्हे फूल-से बच्चे का उन्ह असीस देनी ही चाहिए। मगर इस नटखट आस आर खाखली प्रतीक्षा का खेल अत तक चलता रहा।

और आखिरकार पच्चीस दिसबर आ पहुँचा। शाम ढलने लगी। किसी प्रकार साहस बटारती अनिता पति के पास आकर बाली—"अपनी गाडी खराब पडी है। जाकर टैक्सी ल आइए। हम दाना जाकर चाचाजी का ल आएँ।" सुनकर वशी खुश हुआ। जल्दी-जल्दी कपडे बदले और टेक्सी लेने चला गया।

जब तक वे मास्टर नकीराम के ठिकाने तक नही पहुँचे अनिता एक ही सपना बार-बार बुनती रही—रूठेगे मना करेंगे—ऐसे जिद्दी नहीं हैं वे। चाहे कितना रूठे उनका हक ह। पर हम छोडगे नहीं। किसी भी तरह माफी माँगकर उन्हे मना लाएँगे। कहगे आपके ही प्रताप से यह खिलाना आया ह। आपका ही है। आज की रात हमारे यहाँ गुजारनी हागी। सुबह मुन्ने का नामकरण-सस्कार और शाम को हमारी शादी की सालगिरह-उत्सव आपकी देखरेख म हागे। व कहगे—अच्छा-अच्छा ता यह बात है! जरा ठहरा! फिर व तैयार हाने कमरे म चले जाएँगे। थाडी ही दर म अपना सफेद कुर्ता-पायजामा पहने, कधे पर लम्बा झाला लटकाए तैयार। ता चलो। घर से बाहर निकलते ही कहेगे—अरे तुम लाग ता गाडी ले आए! नाहक तकलीफ की। मैं काइ पराया थाडे ही हूँ।

परन्तु यह क्या ? वहाँ तो दरवाजे पर एक मामूली-सा ताला झूल रहा था। व सोच म पड गए। फिर उन दाना ने इधर-उधर देखा। काइ नजर नहीं आया। अत म पडासी के दरवाजे पर दस्तक दी।

धुँधलका छा रहा था। हल्क-से । खाँसी
शिथिल-सा स्वर सुनाइ दिया—"कान ? ?

मास्टरजी। मास्टरजी की तो मौत हो चुकी है।"

सुनकर दोनों स्तंभित रह गए।

"हैं कब?" वंशी ने किसी तरह पूछा।

पड़ोसी ने अब उन्हें पहचानते हुए बड़ी हैरत से कहा—"आप? आपको तो पता होना चाहिए। मैं खुद यहाँ पर मौजूद नहीं था। सुना है नवम्बर की पहली तारीख को वह देवता देवात्माओं के साथ जा मिला।"

अनिता फफक-फफककर रो पड़ी। सारे रास्ते ही सिसकियाँ भरती रही। सारी रात आँसू बहाती रही।

सुबह नामकरण के समय मन्त्रोच्चारण के बीच पंडितजी ने बच्चे का लग्न निकालने के लिए कहा—"हाँ ठीक है जन्म-स्थान समय हाँ अब जन्म-तिथि बोलिए जन्म-तिथि।"

वंशी धीरे से बोला—"पहली नवम्बर।"

पंडितजी ने पोथी खोली। हिसाब लगाया। नाम के लिए जो राशि निकली वह 'न' अक्षर पर थी।

दोनों ही के मुँह से एक-साथ निकला—"नेकीराम।"

कहानी समाप्त हो चुकी थी किन्तु फिर भी मैं कुछ देर के लिए उसी में खोया-सा अनुभव करता रहा। बहुत-कुछ था जो अनसुलझा-सा लगता रहा। गौर किया—कहानी के अंत में भी लेखक का नाम नहीं छपा था।

कहानी पढ़ने के दौरान एक-दो बार मन सोचा था कि ज्यों ही मैं कहानी पढ़कर गर्दन उठाऊँगा वह फौजी अफसर मेरी प्रतिक्रिया जानने के लिए, मेरी ओर देख रहा होगा।

किन्तु मैंने पाया—जनाब अपनी ऊपर की बर्थ पर पड़े खर्राटे ले रहे थे। मेरी किताब उनके सिरहाने के नीचे दबी पड़ी थी।

सोचा—अब सवेरे ही उनसे बात हो पाएगी।

देर तो बहुत हो चुकी थी। मैंने रोशनी बन्द की और फिर से उन्हीं पात्रों और स्थितियों में डुबकी लगाता-लगाता जाने कब नींद की गिरफ्त में आ गया

खूब धूप चढ़ आई तब जाकर नींद खुली। नेकीरामजी नहीं थे। उस पत्रिका के स्थान पर मेरी किताब रखी थी। ठीक है वे इटारसी ही उतर गए थे।

मुझे तो बहुत आगे तिरुपति तक जाना था अकेले। जिंदगी में पहली बार अकेले यात्रा करना अखरने लगा था।

●

कबूतरी

नई-नई शादी हुई थी सुनहरे की।

फूल-सी नाजुक लड़की छन्नो। नख से शिख तक शृंगार रस में लिपटी हुई, अथवा शृंगार रस की ही साक्षात् नायिका—छन्नो।

सास ससुर देवर चाचा-ससुर-सास आदि सभी छन्नो के मोहपाश में आ बँधे। दिन रात पुकारते न थकते—छन्नो छन्नो छन्नो।

छन्नो भी हाजिर-जवाब। जवाब देते न थकती—जी जी जी। अभी आई। हाँ जी।

सुनहरा तो कुछ कह नहीं पाता। सबके सामने उसका नाम लेकर तो क्या पुकारता छन्नो की कमनीय देह पर दृष्टि पड़ते ही लज्जा-जल में भीग जाता।

दरअसल छन्नो का सुनहरे का यही रूप-गुण मुग्ध कर गया था। वह उस पर मर मिटी थी। लेकिन मर मिटने से ऊपर, दूसरा ही कारण था। उसे 'वहाँ' पूर्ण संरक्षण की व्याप्ति दिखाई दे गई थी।

बात पुरानी नहीं है। सुनहरा अपने एक मित्र की बरात में शामिल होकर छन्नो के शहर बागाडारी गया था। यह शहर सुनहरे के गाँव तिरमिन के पास ही पड़ता है।

मौसम भी क्या! फुल्लाँ दी बहार (फूला की बहार)। वहाँ तोरण-द्वार रोके कई चुलबुली नवयावनाएँ सजी-धजी खडी थीं। अपने हाव-भाव ओर तरह-तरह के हास्य-स्वर निकालकर वरपक्ष की 'खबर' लेने लगी थीं। नखर दिखा रही थी और दूल्हे से प्रवेश पाने से पूर्व ही करीचडियाँ (अँगूठियाँ) और दो-दो सौ रुपए देने का तकाजा कर रही थीं।

तकरार म ज्यादा समय लगते देख अकस्मात् सुनहरे का लज्जालु-रूप मित्र क पक्षधर के रूप मे उभर आया, "यह कैसा स्वागत हो रहा है ? सीधे से रास्ता छोडा!"

"अरे वडा आया दूल्हे का नवाब! जब तू घोडी पर चढकर आएगा तुझ कजूस से कुछ नहीं लेगे।"

क्षणभर को सुनहरे की नजरे सामने खडी रूपसी पर ठहर गईं। ऊपर से चुहल-भरे हँसी के समवेत स्वर। सामना नहीं कर सका वह। शरमाकर कही दूर जा दुबका।

वहाँ बरात डेढ-दो दिना तक ठहरी थी। सुनहरा छन्नो से बचता फिरा। साथ ही उसकी आँख, उसे पलभर पा लेने की कामना मे व्याकुल बनी रही, लेकिन सामना करने की हिम्मत नहीं होती। हाँ जब-तब छन्नो ही सुनहरे का सामना करती। उसके, झुकी हुई पलकोवाले रूप को अपने मे समेटती। थाडा एकात पाते ही मीठे स्वर मे फुसफुसाती, 'कहो दूल्हे के राजा!'

परन्तु इस तरह की बहादुरी दिखानेवाला छन्नो का यह अलग ही रूप था। अन्दर से वह बहुत डरी और हिली हुइ लडकी थी जो विवाह के नाम से दहशत खाती थी।

पिछले तीन साला के दौरान वह अपनी एक अतरग सहेली आर एक मौसेरी बहन खो चुकी थी। उनकी याद मे वह सदा पीडित रहती थी। आदमी जालिम होते हैं। जितना भी दहेज दो, ससुरालवाला का लोभ नही जाता और लडकिया को जला मारते हैं। इसलिए छन्नो ने एक तरह से विवाह न करने का फैसला कर लिया था।

"सभी ऐस नहीं होते। बुआ की लडकी केतकी को देखा! दूसरी मौसी की लडकी पारो का देखो। सभी सुखी गृहस्थ-जीवन जी रही हैं।" माँ-बाप-भाइ समझा-समझाकर थक रहे थे। परेशान थे।

छन्ना ने केतकी और पारो का भी टटोला था और पाया था कि उनके पति भी यदा-कदा रौब जमाने के लिए हाथ उठा बठते हैं। इसीलिए वह अपना विवाह न करने की जिद पर कायम थी।

अब सुनहरे से साक्षात् होने के बाद छन्नो की भावनाएँ नई करवट लेने लगी थीं—इतना विनम्र और लज्जालु युवक कभी क्रूर नहीं हो सकता।

अगले तीन-चार महीनों में उसने अपनी नवविवाहिता सहेली के माध्यम से सुनहरे तथा उसके घर-परिवार के विषय में सब पता लगा लिया। सब-कुछ उसके मनानुकूल था।

छन्नो के घरवालों ने छन्नो का प्रस्ताव सुना तो खुश हुए—चलो मानी तो। परन्तु जब छन्नो के बाप शाह गुरजीतसिंह ने, सुनहरे के बाप बते चाचा सते के नाम सुने तो माथा पीट लिया "कहाँ हम खानदानी लोग और कहाँ वह कगालों का घर। इस झल्ली (बेवकूफ लड़की) ने कहाँ जा मुँह मारा। रिश्ता तो हमेशा बराबरवालों से चलता है।"

"मगर बराबरवालों को तो यह हर बार नकार देती है। चलो कहीं तो हाथ रखा। लड़की अपना भाग लेकर ससुराल जाती है।" छन्नो की माँ ने पति और लड़के को ऊँच-नीच समझाकर लंबी बहस के बाद किसी तरह राजी कर लिया कि अब और देरी करना फजूल है।

सुनहरे और छन्नो की शादी किसी तरह से हो गई। लेकिन सेठ गुरजीत-सिंह और लड़के हुकमसिंह को यह शादी शुरू से आखिर तक कभी रास नहीं आई कि समधी जोड़ के नहीं मिले जिन्हें साथ बिठाया जा सके। लड़की की जिद के सामने यह सोचकर झुक गए थे कि चलो उन्हें मालामाल कर देंगे और नहीं तो एक-दो फैक्ट्रियाँ सुनहरे के नाम कर देंगे। यहाँ कौन-सी कमी है। परन्तु जब सुनहरे ने दहेज तक लेने से इन्कार कर दिया तो उन्हें सदमा पहुँचा। बाद में यह सदमा नफरत की हद तक बढ़ गया। इस तरह सारे सरोकार लगभग खत्म हो गए।

फिर भी माँ का दिल। यदा-कदा छन्नो को अकेली बुला लेती। तब सब मिलकर उसे खूब खिलाते-पिलाते, मानो मासूम बच्ची मुद्दतों से भूखी-प्यासी है। मगर छन्नो पर बेचैनी काबिज रहती। उसके लिए अब सुनहरे-बते-सते-परिवार के बिना जीने की कल्पना निराधार थी। वह जल्दी से जल्दी कपड़े-लत्ते सौगात लिये बिना ससुराल जा पहुँचती। इससे भाई हुकमिया और सेठ गुरजीत शाह अपमानित अनुभव करते।

इधर सुध-बुध खोए छन्नो घर में घुसते ही सीधे सुनहरे से जा चिपटती और सिसक रही होती। सब देख-देखकर हँस रहे होते। सुनहरा लजाकर जिधर रास्ता मिलता भाग रहा होता—कित्थो पल्ले पै गई (कहाँ से पल्ले पड़ गई)।

यहाँ पर प्यार के बँटवारे की व्याख्या या उसकी सीमा-रेखाएँ खींचना आसान नहीं। सुनहरे का अपना हिस्सा। तमाम घर के सदस्यों का अपना-अपना हिस्सा।

छन्नो बिना लाग-लपेट अपना प्यार सबको ही लुटाती फिरती। इधर से उधर, उधर से इधर छिटकती फिरती। 'जी आई' के साथ हर एक की सेवा मे हाजिर।

अब यह उन सबके सोचन का अदाज बना रहता कि छन्नो कब किसकी ज्यादा लाडली बन चली है। सुनहरे की ? सुनहरे के बाप बते की ? चाचा ससुर सते की ? चाची सास लाली की ? देवर राज की, इसकी या उसकी, या एक-साथ सभी की ?

बते से ज्यादा सते को ही जैसे छन्नो के आने की खुशी हुई थी। एक रोज भी न गुजरता—घर पर खाने का न्यौता "आना छन्नो! सुनहरे को लेकर।"

"हम क्या बुरे हैं ?" घर के दूसरे सदस्य कहते।

"नहीं-नहीं छन्नो! तुम सभी को लेकर आना। कोई रह गया तो तेरी गिच्ची (गर्दन) पकडी जाएगी।"

कुछ वर्ष पूर्व बते और सते दोना भाइया मे मनमुटाव पैदा हुआ था और सता अपने परिवार के साथ रेलवे लाइनो के पारवाले मकान मे जाकर रहने लगा था। अब छन्नो के आने पर दोनों ही परिवारा का इसका मलाल होने लगा। छन्नो ने चटके हुए घरा को फिर से जोड दिया था।

सभी जने आज सते के घर तो कल बते के घर मिलकर खा-पी रहे हैं, गा-बजा रहे हैं। किसी प्रकार की कोई औपचारिकता नहीं। कोई-सी भी दाल या सब्जी बना ली जाती। कभी लाली चाची अपने घर से रोटियाँ बना लाती सब्जी का इतजाम बते के घर। जिसको जैस सुविधा होती दुकानो स मिठाई-फल ले आता। गुड-शक्कर, घी, मूँगफली, मूली, गाजर झोला मे डालकर कभी-कभी मौसम क मुताबिक रेत क टीला पर जा बैठत, तो कभी अपने घरा में रग जमता।

हीर गाई जाती। सस्सी-पुन्नू, मिर्जा-साहिबाँ की दास्ताने होतीं। हँसी-मजाक चुटकुला से पूरे वातावरण से महक फूटती। कहकहो के अनवरत सुरो का अपना ही सगीत सबको बाँधे रखता।

इन महफ्लि मे हर कोई छन्नो को खींच-खींचकर अपने पास बिठाना चाहता। छन्नो चहकती। फिर छिटककर कभी इसके तो कभी उसके साथ सट-कर बैठ जाती। चाहे काई हो, बडी बेतकल्लुफी से पेश आती। सबको बारी-बारी स छेडती, छकाती और मुसकराती रहती।

फिर सब मिलकर सुनहरे को छेडने लगते—"जवान ता जवान यहाँ तो बूढे तक तुम्हारी छम्मकछल्लो को ले उडने की फिराक मे हैं।"

सुनहरा भी बडा मस्त मौला। थाडा शरमाकर कह देता "सबकी ही ता है यह। आपकी और तरीके से, मेरी और तरीके से। क्या छन्नो ?"

छन्ना धीरे-से *हाँ* के भाव से मटकती।

सुनहरा कहता, "इस छन्नो ने तो आप सब पर गीत लिख रखे हैं। हाँ तो छन्ना सुना दे कोई फड़कती हुई चीज।"

छन्ना बेहिचक, कोयल-सी कूकने लगती—

मैं *रश्के-हूर* (स्वर्गांगनाओं के सौन्दर्य को लज्जित करनेवाली)
मानो मेरा *एहसाने-रब्ब* (लगाव, दोस्ती)
धूर्त है *सोरा* (ससुर) बता
निकलिआ काइयाँ सता
दिराणी जिठानी *भैड़ी* (बुरी) सखियाँ
देउर (देवर) मेरे दियाँ मैलियाँ अखियाँ
खसम मेरे नूँ कुझ ना आदा
दूर दूर ता *जफियाँ पाँदा* (गलबहियाँ डालता है)

उस दिन यह सब बते के घर पर ही चल रहा था। 'हो-हो' 'हो-हो' के साथ ठहाके लग रहे थे।

किसी को पता भी न चला हुकमसिंह यह सारा तमाशा दरवाजे के बीचोबीच खड़ा देख रहा है। पहले-पहल छन्ना की नजर उस पर पड़ी तो वह दौड़कर भाई का हाथ पकड़ अन्दर खींच लाई। सभी ने मिलकर उसका गर्मजोशी से स्वागत किया। घरवालों का हालचाल पूछा।

प्रतिक्रिया में हुकमसिंह जैसे शून्य में डोल रहा था। बहन से मिलने की भी कोई खुशी नहीं। निर्जला एकादशी के अवसर के लिए जो-जो सामान लेकर आया था छोड़कर जाने लगा तो बते-सते ने हाथ जोड़कर बैठने और कुछ खाने-पीने का इसरार किया।

"बहन के घर का पानी पीना हमारी गैरत के खिलाफ है।" इतना कहकर वह फिर चलने को हुआ तो बते ने कहा, "बरखुर्दार! हम पहले भी गुजारिश कर चुके हैं ये चीजें लाने की तकलीफ न किया करें।"

सता भी *बोल पड़ा, "हम जाट लोग अपनी खेती-बाड़ी और अपने में* खुशहाल हैं। आप तो आते-जाते रहा करें। हमारे साथ बैठकर खाओ-पियो। *आपकी लाडली अब हमारी धी (बेटी) है इसे किसी चीज की कमी नहीं है।"*

"वह सब तो मैंने अपनी आँखों से देख लिया है।" बड़बड़ाता हुआ हुकमसिंह चला गया।

इसके कोई चार रोज बाद छन्नो को शाह गुरजीतसिंह का बुलावा आया। छन्ना के वहाँ पहुँचते ही बाप ने उन सबको लानत-मलामत देनी शुरू की "घर

को कजरखाना बना रखा है! तुम्हे भी किसी के सामने शम-हया नहीं ? बड मगरूर बनते हैं। जेब में टक्का नहीं ''

जब पिता बहुत बोल चुके तो छन्ना ने धीरे-धीरे सबको अपना दशन समझाना चाहा ''वे मगरूर नहीं—स्वाभिमानी हैं, हर आदमी का अपना-अपना नजरिया और रहन-सहन का तरीका है। मैं वहाँ सुखी हूँ। मैं बचपन स ही साचा करती थी कि सुखी जीवन का सबध बगलो और बढिया पकवाना से नहीं '' छन्ना साचती थी शायद काई तो उसकी बात समझेगा, मगर वह बीच मे ही टाक दी गइ।

हुकमसिह वही पुरानी रट लगाने लगा, ''बस-बस सबका देख लिया। हमसे ही पैसे लेकर थोडा हमारे बराबर दिखाई देने लगते, तब भी काई दिक्कत नहीं थी। यहाँ कौन-सी कमी है ? लेकिन नहीं। वह तो हमारी नाक काटने पर उतारू हैं। ऐसी हालत मे हमे उन्हे समधी कहते भी शर्म आती है।''

माँ भी उसकी बात नहीं समझ रही थी पर उसकी सहानुभूति सच्ची थी ''बेटी अब तुम यहीं आराम करा। इस हाल म छाट-स गाँव म तुझ वहाँ कौन सँभालेगा ?''

पर छन्ना रुकी नहीं। तीसरे ही दिन चल दी।

छन्ना के लौटते ही सूने घर म जैसे फिर से पहलेवाली बहार लौट आई। वही कायरा की चहक। सभी मदहोश। नशे मे चूर।

तभी अचानक एक दिन उस रहस्य का पता सबको चलता है जिसका पता छन्ना की माँ का पहले ही लग चुका था कि एक नया मेहमान धीरे-धीरे उनके परिवार की आर बढ रहा है। मारे खुशी के किसी के पाँव नही टिकते। उठते-बैठते साते-जागते उसी अनदेखे मेहमान की बाते। गुणा की प्रशसा। जितनी नाजुक कोमल हमारी छन्नो वैसा ही राजा बेटा या रानी बिटिया होगी। ऊँहुँ यह नहीं, यह नाम ठीक रहेगा। अनवरत प्रतीक्षा।

महफिला का सिलसिला फिर से चल निकला था। एक शाम चाचे सते के घर हँसत-खेलत छन्ना का पाँव सीढिया स फिसल गया। छन्नो क साथ जैसे सब का दम निकल गया। हकीम ने सलाह दी—''शहर के अस्पताल मे काशिश कर दखा। वैस अब कुछ बाकी नहीं दीखता।''

भाग-दौड शुरू हो गई। छन्नो की साँस बहुत धीरे-धीरे चल रही थी। देवर मोटर साइकिल से शहर गया, भाभी के मैके इत्तिला दी। हुकमसिह का साथ लेकर अस्पताल से एम्बुलेस ले आया। अब हुकमसिह सबका गालियाँ निकाल रहा था। फिर वह एम्बुलेस से छन्नो को ले गया और किसी का साथ नहीं चलने दिया।

दूसरे ही दिन दोपहर को शाह गुरजीतसिंह का सदेशा मिला—छन्ना अब

नहीं रही। अगर अपना भला चाहते ।। तो इधर को मुँह मत करना, नहीं तो सारी उम्र कचहरियां और जेल की सैर करते नजर आओगे।

छन्नो के इस ससार म न रहने से सुनहरे के साथ सबका ही ससार उजड गया। सभी बिलखने लगे। कौन किसको तसल्ली दे।

चौथे दिन बडी हिम्मत जुटाकर वे बोगाडोरी गए। आसपास वालो से पता चला—अस्पताल से वे सीधे छन्नो का अतिम सस्कार के लिए पजाब में अपने पुश्तेनी गाँव ले गए थे। नौकर घर सँभाल गया है। अब वे यहाँ लौटेगे नहीं। मन नहीं टिकेगा। पटना साहिब से आगे, जहाँ उनके कारखाने चलते हैं वहीं रहेगे। तुम लोगो ने उन्हे उजाड दिया।

'मौत का कोई इलाज नहीं। मगर छन्नो, तूने हमे इलाज का कोई मौका तो दिया होता। तू देखती हम सब अपने जिस्म की आखिरी बूँद तक निसार कर देते। मगर तू तो इतनी अच्छी थी कि किसी को कष्ट देना जानती ही नहीं थी। न तू हमे इतनी खुशियाँ देती, न हम इतना कष्ट पाते। हम तो तुम्हारे होकर भी अतिम समय तुम्हारे न हो सके।' सभी विलाप करते।

दो बार पटना साहिब पहुँचकर आगे की मजिल पूरी भूल-भुलैया साबित हुई। फिर परायेपन के आलम मे हासिल भी क्या होना था! वहाँ इनके शोक का समझनेवाला था ही कौन?

इसी प्रकार एक साल गुजर गया। आज छन्नो की पुण्य-तिथि थी। सध्या-समय बते के घर दोनो परिवार इकट्ठे हुए। कभी रो-रोकर तो कभी मलिन हँसी के साथ छन्नो की छोटी से छोटी बातो को याद कर रहे थे। अतीत के उन सपना-से लगनेवाले दिना को ताजगी देने की चेष्टा कर रहे थे, छन्नो के बनाए गीत—मैं रश्के-हूर। मानो मेरा एहसाने-रब्ब

गाना मे रुदन है। उनकी हँसी मे रुदन है।

सहसा इस रुदन मे किसी नवजात शिशु का रोना भी सुनाई दे जाता है। सब चौंककर देखते हैं। सामने दरवाजे से छन्नो बढी चली आ रही है। गोद में बच्चा रो रहा है। छन्नो पीली पड गई है। डरी हुई और बहुत थकी हुई छन्नो। सभी एक साथ उसे गले लगाने को आतुर—कहाँ थी तू?

''कैद में। माँ ने मदद की। भाग आई।''

छन्नो सिसक रही है।

''हाय, तुझे क्या हो गया मेरी बच्ची।'' सते-बते और सास के भीगे स्वर। सभी उसे अपने में समा लेना चाहते हैं। छोटी छन्नो अब होंठों में मुसकराकर सबको हँसा रही है। ●

लपटें

दो घंटे बीत चुके थे, लियाकत बाबू का घर लौटे हुए। उनकी कनपटी की नसें अब तक बज रही थीं—चक-चक। टपकता गर्म लहू। जैसे छुरा का प्रहार उन्हीं पर हुआ हो।

पत्नी से विशेष बात नहीं की। उसको किसी बात की भनक न पड़े इसलिए बेदिली से खाना तो खा लिया और आदत-मुताबिक आराम करने को भी लेट गए, लेकिन जल्द ही बेजारी के आलम में उठकर आँगन-कमरा के चक्कर लगाने लगे। फिर टैरिस पर जा पहुँचे।

अपने-आपसे कहने लगे—उम्रदराज और तजुर्बेकार आदमी यह नहीं होता और न ही यह उम्र और अक्ल का तकाजा है कि जो मुँह में आया अट-शट बक दिया। वे अपने पर खीजने लगे। कुछ घंटे पहले अपने सामने देखा सारा दृश्य रह-रहकर साकार होने लगा—चक-चक। मन द्रवित होने लगा— बेचारा। मगर मैं ही क्या ?

बुरा मत देखो! बुरा मत सुनो! बुरा मत बोलो! अगर मैं भी औरों की तरह बुरा न देखता तो काहे को बुरा बोलता और इस वक्त शायद मेरी हालत दूसरी तरह की होती। खैर अब उम्र के शुरुआती दौर से नजात पानी होगी और हौसला बुलंद रखना होगा।

लियाक़त बाबू ने अपनी कनपटिया पर दोनों हथेलियां का दबाव डाला— चक-चक।

तो गलती कहाँ पर हुई ? झूठ कहाँ बोला ? अपनी आँखा के सामने जा कुछ भी दूर से देखा था, उसे साफगोई से बयान-भर कर दिया था बस। क्या बुरा किया ? किसी को जानता नहीं हूँ। अब भी किसी को पहचान नहीं सकता। निप्पक्ष निष्कलक।

कैसे सह सकता था उस बेबस इन्सान की चीख का जा एकाएक सरे-बाजार तीन-चार जना द्वारा पकड लिया गया था। उसकी निरीह चीखा को सुनकर *अँगुलियाँ काना म चली गई थीं। फिर भी दूर से 'हाय मार डाला। बचाओ, काई* बचा लो' की गुहार सुनाई देती रही थी। मगर कौन बचाता ? मैं भी कहाँ बचा पाया ? 'खटाक-खटाक' दुकाना के शटर बद होने की आवाजे सरपट भागते लोगा की आवाजे, घाडा की टापो की तरह सडक का हिला रही थीं—टप-टप-टप । जब तक नजदीक पहुँचा कुछ लाग चाकुआ से लथपथ घायल का खींच ले गए ओर मारनेवाले भी वहाँ से रफूचक्कर।

बस यही कुछ हुआ था वहाँ। थोडी देर बाद पुलिस की जीप आ पहुँची थी। वहाँ पर कोई नहीं था। अगर कोइ था ता महज लियाकत बाबू। हाँ मैं लियाकत बाबू। अपने-आपका उम्रदराज और तजुर्बेकार कहनेवाला। अपने नागरिक कर्त्तव्य का पालन करनेवाला। क्या बुरा किया ?

जा मजर आँखो के सामने गुजरा था पुलिस को कलमबद करा दिया। काँपते हाथा से नीचे दस्तखत कर दिए। मुकम्मल पता दर्ज करा दिया। कराना ही था।

ता घबराहट किस बात की ? अपने लबे कद का तानते, टापी को उतारते-पहनते आहिस्ता-आहिस्ता कदम उठाते हुए घर पहुँच गए। *अब भी उनके काना* मे उस कत्ल किए जाते आदमी की चीखे बरकरार थीं—कोइ बचाआ ! फिर वही चक-चक।

अब धैर्यपूर्वक फिर से पूरे माहौल का जायजा लेना चाह रहे थे। अपने का आश्वस्त कर रहे थे तसल्ली दे रहे थे। आज तक गुडा को करीब से नही देखा था। पुलिस के नजदीक नहीं फटके थे। ता क्या हुआ ? अपना किसी से क्या लेना-देना। कसे मुमकिन है एक तरफ ता सच के पैरोकार बने दूसरी तरफ सच से आँख फेर ल। इस सोच के बावजूद एक डर, एक दहशत उनको घेरती रही। बुरा हुआ। अच्छा होता एक घटा पहले या बाद मे घर से निकलते।

टरिस पर से ही देखा तीन लडका को। गली के माड से पूछते-पुछाते इधर

ही चढ आए हैं—उनके मकान के सामने। कोई नहीं बोला। बस इशारे से लियाकत बाबू को नीचे आने को कहा।

पैरों को काँपने से बचाते हुए लियाकत बाबू सीढ़ियाँ उतर आए। बाहर गली में आकर गौर किया। तीनों बीस-बाइस साल के मजबूत कद-काठी के युवक। एक ने गहरे नीले धब्बों वाली पैंट पहन रखी है और चौड़ी बैल्ट कंधे पर झूल रही है। बल्ट पर मोटे-मोटे नुकीले कील जड़े हुए हैं। वही लड़का सबसे पहले लियाकत बाबू के एकदम सामने आ खड़ा हुआ। बोला कुछ नहीं। चुपचाप खड़ा उन्हें घूरता रहा।

दूसरा लड़का देहाती पोशाक पहने था। उसने कुछ झुकते हुए विनम्रता से पूछा—"क्या ऐ ही लियाकत जी रा ठिकाना हो?"

लियाकत बाबू ने जवाब दिया—"जी हाँ। फरमाइए?"

तीसरा लड़का इस गरमी में भी लय झूलते हुए कोट में था। उसने झट से जवाब तलब किया—"तो आप ही लियाकत अली हो?"

लियाकत बाबू ने गरदन के इशारे से हामी भरी—हाँ।

पहलेवाला लड़का, अब भी उन्हें उसी अजीब ढंग से घूरे जा रहा था। उसकी लंबी-लंबी मूँछें थी होंठों को लपेटे हुए। कंधे से बल्ट हाथ में आ गई थी। उसे धीरे-धीरे झुलाने लगा।

लियाकत बाबू उन सबको समझ-परख रहे थे। एक-एक के हाव-भाव और नाटकीयता का जायजा ले रहे थे। दिल की धड़कन मामूल पर आ गई थी। इंतजार में थे कि अब इनमें से कौन मुँह खोलता है और क्या फरमाइश रखता है? तब उन्हें क्या उत्तर देना होगा और किस टोन में?

घर में इस वक्त कोई बेटा नहीं था। दोनों ही अपने-अपने ऑफिस गए हुए थे। पत्नी आँगन के पिछवाड़े गेहूँ साफ करने में व्यस्त थी। वे उसे इस प्रत्याशित या अप्रत्याशित स्थिति की झलक से दूर ही रखना चाहते थे। आह बेचारी 'सहम जाएगी।

"क्या खिदमत कर सकता हूँ?" किसी को भी न बोलता देख आखिरकार उन्होंने ही जबान खोली। स्वर यथासंभव नियंत्रित और विनम्र था।

इस पर देहाती वेशभूषा वाला युवक ऐसे बोला जैसे मुद्दत से जान-पहचान हो—"चाचाजी तो अब हम यह समझ ले कि आप दुश्मन से मिल गए हैं?"

लियाकत बाबू में अब तक काफी दम लौट आया था। उस छोकरे के अजीबोगरीब अंदाज जल्दी-जल्दी पलटते रूखे लहजे को देखकर मुसकरा पड़े—"भतीजे जब रिश्ता ही कायम हो गया तो संकोच कैसा? सबको लेकर

बठक म आ जाआ। वहीं बठकर बात करा। वैसे बता दूँ—यहाँ पर नया आया हूँ। यहाँ या कही पर मेरा काई दुश्मन नहीं हे।"

"सच कहते हागे जनाव। अव तक तो काई नहीं होगा।" पहले लडके ने वैल्ट का अपन हाठा से चूमा—चड। आवाज जस हाठा स नहीं मूँछा से आ रही हा—"मगर यह जरूर समझ ले अगर आपने अपना स्टेटमेट नही बदला तो हम ही आपके दुश्मन हो जाएँगे।"

"आपको हक हे वरखुर्दार। मैं फिर भी किसी को अपना दुश्मन नहीं समझूँगा।"

अब काटवाले युवक को हस्तक्षेप करने का मोका मिला। उसने देहाती वेशभूषा वाले लडके की तरफ इशारा करत हुए कहा—"अभी लतीफ ने जा रिश्ता कायम किया वही कायम रहे। कसम खुदा की आप हम तीना के ही चाचा बने हैं। आपका किसी तरह की आँच नहीं आने दगे।"

इससे पूर्व कि लियाकत बाबू कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करते गली म बढती हुइ पुलिस-जीप की घरघराहट सुनाई दी। वडी फुर्ती से तीना ही लडके ड्योढी के रास्ते लियाकत बाबू की बैठक मे चले गए।

पुलिस का एक सिपाही साथ ही कोई इस्पेक्टर था।

"आप ही लियाकत अली हैं?"

"जी हाँ।"

"आप ही का बयान बाजार म दज हुआ था?"

"बेशक।"

"आपसे कुछ पूछना हे।"

एक बार फिर से लियाकत बाबू के सामने उस रक्त-रजित विलखते हुए शख्स का चेहरा साकार हा उठता है—बचाआ। काई बचा ला ।

थाडी देर पहले लडका से बातचीत के दौरान वे उस भूल-से रहे थे। अब फिर से पुलिस का सामना हाने पर तडप-से उठे—"उसका क्या हाल है?"

"हमे क्या मालूम। किस-किस का ध्यान रखे? अगर वह मर गया तो हम 325 धारा को बदलना पडेगा।" थाडा रुककर साचते हुए जाडा—"फिर धारा 302 लगानी हागी।" फिर जरा रुककर हाँ-हाँ हूँ-हूँ की ध्वनियाँ निकालने लगा। चिमटीवाली तख्ती पर नजर डालते हुए, जैसे धाराआ म उलझ गया—कौन-कौन-सी कितनी धाराएँ?

"बेचारा ।" लियाकत बाबू फुसफुसाए।

"छोडिए उसे। क्या आप उसे जानते हैं?"

''बिल्कुल नहीं।''

''कोई बात नहीं। उसी केस पर आपसे कुछ सवाल पूछने हैं। सही-सही बताना होगा।''

''गलत क्यों बताऊँगा।''

''ज्यादा बनिए नहीं। आपको हमारे साथ थाने चलना होगा '' गर्म लहजे मे एक नर्म लफ्ज जोड दिया—''भाइ साहब।''

''जितना कुछ जानता था, वहीं मौका-ए-वारदात पर ही सन बना दिया था।'' लियाकत बाबू थोडा अटके—''अब वहाँ पर क्या पूछेंगे ?''

''यह दस्तखत आप ही के हैं ना ?'' इस्पेक्टर ने [illegible] कागज निकालते हुए उनकी ओर बढा दिया—''पहचानिए।''

''जी हाँ, मेरे ही हैं।''

''तो फिर चलिए हमारे साथ।''

गली सुनसान थी, एकदम गर्मी थी। कभी-कभी हवा का कोई झोंका जरूर आ जाता था जैसे उसी झोके के साथ हाथ में झोला [illegible] दिखाई दिए। शायद सब्जी वगैरह लेने जा रहे थे। लंबा कद। [illegible] हुआ जिस्म। छह-आठ महीने पहले पुलिस-विभाग से [illegible] हुए थे। मुसकराते हुए सबका हाथ उठाकर अभिवादन करने लगे। फिर लियाकत बाबू को एक तरफ ले गए। लियाकत बाबू ने [illegible] में बात खत्म कर दी और वापस मुडने लगे।

''ऐसा नहीं होता।'' डपट-भरा स्वर था।

''नही चलूँ ता ?'' लियाकत बाबू ने सुन रखा था कि दबने से ये लाग ज्यादा परशान करत हैं।

''चलगे कैसे नहीं ? जितनी बार बुलाएँगे आपको आना पडेगा। फिर कचहरी मे भी ता आप ही का गवाही दनी पडगी। आप ता पढे-लिख मालूम देत है।''

''जा कुछ मेरी तरफ से आपके लाग लिखकर ले गए हैं वह ?''

''वह महज सरसरी तार पर है। पक्की कारवाई तो इचार्ज साहब के सामने हागी। आप शरीफ आदमी हैं इसीलिए आपको बहुत वक्त दे चुके हैं भाई साहब। वरना हमारी आँखा स काइ छुपकर जा नहीं जा सकता। सच-सच बताइए, हमार यहाँ पहुँचने से पहले कौन लाग आपके पास खडे थे ?''

''आपके भतीजे।''

''क्या मजाक ह भाई साहब।'' इस्पेक्टर ने इधर-उधर झाँकते हुए आश्चर्य प्रकट किया।

लियाकत बाबू ने तटस्थ भाव से उत्तर दिया—''जैस आपन मुझे भाई साहब मान लिया उसी तरह उन्हाने चाचा मान लिया है। इस तरह वे आपके भी तो भतीजे हुए ना।''

''बुलाइए उन्ह फौरन।'' दोना पुलिसिए एक-साथ पूरे तेवर में आ गए—''लगता ह आप भी साजिश मे शामिल हैं।''

इतनी दर तक ताना ही खिडकी के पल्ले से सब-कुछ सुन रहे थे। एकदम आ प्रकट हुए। आते ही उन दाना के पाँव छूने लगे—''प्रणाम चाचाजी।''

वही लडका फिर से अपनी कीलदार बैल्ट घुमाने लगा। दूसरे ने अपना कोट उतार दिया। तीसरे ने मूँछो पर ताव देत हुए कहा—''अच्छा अकल जरा दिखाइए ता इनवाला कागज।''

पुजा तो इस्पेक्टर के हाथ मे ही था जिसे दिखा-दिखाकर वह लियाकत बाबू का चेतावनी दे रहा था। लडके ने फौरन पुर्जा झपट लिया। बडे धैय से पढा, फिर चिंदिया मे तब्दील कर दीवार के सहारे फक दिया और उस पर पेशाब करने लगा।

''तुम सुबूत नष्ट करने का धारा धारा म धर लिये जाआगे। धारा अभी बताता हूँ। हवलदार साहब। जरा उठाइए सारे पुर्जे।''

''मैं ता ब्राह्मण हूँ महाराज। आप ही जरा ''

''शटअप ''

''विवाद किस बात का?'' एक लडके न स्प्रिट की शीशी कागजा पर छिडकी ओर दियासलाई दिखा दी—''वैसे हमारे उस मे भी काफी अल्कोहल हाता है। अगर आप चाहेगे तो नया रुक्का लिखवा देगे। इस बात से आप भी वाकिफ हें कि वागीश पक्का गुडा दस नवरी चार सौ बीस हे। कई चोरियो आर बलात्कारा म उसका नाम आपके यहाँ दर्ज है।''

''यह एक अलग पहलू ह।'' इस्पेक्टर बाला—''कानून सुबूत इकट्ठे कर रहा है। आपक लागा न ता उसकी नाक और कान ही काट डाले।''

''हाँ उस जगह स भी छेडछाड कर दी। अब कौन-सा मुँह लेकर किसी लडकी के पास जाएगा साला? उस वक्त बाजार क सब लोग खुश-खुश थे। इसीलिए भाग खडे हुए कि बदमाश का सजा मिल रही है। यह चाचाजी तो यहाँ नए-नए आए है सा भालेपन की वजह से फँस गए। बस इन्सानियत के नाते। होगा यह किसी क लिए जान का सवाल किसी के लिए केस और बदला।'' वह तैश मे बोले जा रहा था।

लडके के लबे भाषण पर साचते-साचते लियाकत बाबू की कनपटी फिर से बजने लगी—चक-चक। गिरे कि अभी गिरे। उन्हे लेकर सब जन बैठक मे आ गए। कोटवाला लडका बोला—''चाचा बेफिक्र रहिए। इन साहब लोगो की लडकियाँ यानी हमारी बहन हमारे ही मकान के आगे से कॉलिज जाती हैं।''

तभी वहाँ पर बुरका पहने बेगम आ गइ—''इतनी देर से क्या गुफ्तगू चल रही है?'' पुलिस को देखकर बेचारी घबरा रही थी।

लियाकत बाबू थाडा सँभलकर बेगम का सँभालने लगे—''बेगम यह मेरे स्कूल के पुराने साथी के लडके जलालुद्दीन हें।'' उन्होने सिपाही की तरफ देखते हुए हडबडी मे कह दिया—''और यह सब इनके साथी। जरा चाय-वाय ता तैयार करो।''

बेगम के वहाँ से हटते ही ध्यान आया—''यह क्या बोल गए? अभी थोडी देर पहले यह अपने को ब्राह्मण बता रहा था। और ये सब साथी कैसे हुए? निगाह उठाई तो सब मुसकरा रहे थे।

चाय पीते हुए कोटवाला लडका कह रहा था—''चाचा आपको रैस्ट की जरूरत है। ये तो बडी ही मामूली बाते हैं, हाती रहती हैं। दरअसल बदला लेनेवाले की मौसी की लडकी से वागीश ने बुरा काम किया था। बजाय कानूनी चक्कर के उसने अपने साथियो के साथ मिलकर हाथोहाथ बदला ले डाला। यह सब तो इन लोगो के लिए खेल है।'' फिर इस्पेक्टर की ओर देखकर झुकते हुए बाला—''हमारे लायक और कोई काम हो तो बताएँ। उस हिस्ट्रीशीटर को सजा

मिल गइ। आपका काम आसान हो गया।"

मूँछावाले युवक ने कहा—"यकीन मानिए, हमारा इस मामले मे कुछ भी लेना-देना नहीं है। पर बुरा भी क्या हुआ!"

उस देखकर सिपाही हँसा—"हाँ, न उन लागो ने एफ० आई० आर० दर्ज ही कराई ओर न अभी तक इचार्ज साहब ही दफ्तर आए थे।" बिस्कुट का चाय म डुबाता हुआ वह चहकने लगा।

"अबे चुप! भा " इस्पेक्टर ने उसे एक भारी गाली दे मारी। पूरा कप हलक म उँडलता हुए लियाकत बाबू की तरफ देखकर पसोपेश मे मुसकराया—"ठीक है, जरूरत पडी ता फिर तकलीफ देगे।" फिर से सिपाही को डाँट मारी—"चला जीप चलाआ।"

सामने काकू काजल खडा था। सभी एक-साथ बाहर हो लिये काकू काजल को उपेक्षित करते हुए।

लियाकत बाबू से काकू ने पूछा—"कितना दिया ? "तो ठीक है। अब किस चीज की जरूरत पडेगी। आप खुद कुछ देते हुए डरते हैं तो मुझे दे देना। आपकी तसल्ली क लिए मैं ही उन्हे दे दूँगा और फिर रँगे हाथो पकडवा भी दूँगा। फिक्र न करे। आपके सारे पैसे वापस मिल जाएँगे। आपने गौर किया ? मुझे देखते ही कैसे दुम दबाकर भाग खडे हुए। हा-हा!" वह हँसने लगा—"यह तो इनका हर राज का धधा ह।"

लियाकत बाबू ने माथा पकडा। तेजी से अदर आकर दरवाजा बद कर लिया।

बाहर अब भी हँसने की आवाज आ रही थी। हा "हाऽऽ।

●

चलती-फिरती प्रतिमा

प्रतिष्ठित अग्रवाल प्रगतिशील विचार-सपन्न युवक 25½ 5¼ सरकारी सेवारत आय 7000/- मासिक हेतु योग्य सरल स्वभाव कन्या चाहिए। उपजातीय बंधन नहीं। लिखें—बॉक्स नं 208 c/o केसरी गढ़ी।

आखिर क्या खुराफात है यह? खाली दिमाग। जब-तब जिधर से कोई अखबार खोंचा—मैट्रिमोनियल। हाना-हवाना कुछ है नहीं और न ही फिर कुछ रोना-धोना। पूरी खबरें पढ़ न पढ़, यह साला मैट्रिमोनियल। बाइस वर्ष से ऊपर के सुन्दर युवक की तलाश। किसलिए? किसके लिए? मनोरंजन या खब्त? हाँ यह भी सूटेबिल है। और हाँ एक वहवाला भी। तो फिर। अखबार बंद कर, या पर [illegible] बालकृष्ण राव कुछ भूल जाने की कोशिश में और-और कामों में व्यस्त होने लगते हैं। कभी कोई दफ्तर की फाइल या [illegible] हो तो उसी में सिर गाड़ने लगते हैं। या अगर कोई मित्र आ गया [illegible] [illegible] और कुछ नहीं [illegible] [illegible]

शुरू हुइ थी। उसी डार के हाथ से छूट जाने पर आदमी को कैसा लगता है ?

आजकल नाकरी मिलती कहाँ है। मगर देखत ही देखते दोना लडका देवेश ओर मुकेश की नौकरी लग गइ। नौकरी लगते ही घर मे शानदार बहुएँ आ गइ। जैसे फूला की महक आर सगीत के स्वरो से घर म बहार आ गई। जितना पैमा चाहिए, उसस कहीं ज्यादा घर म मोजूद है। पाँच साल खुद की नाकरी क पड हैं। बहुत अच्छी पशन मिलेगी। पत्नी सामा ने सबकी सेवा विशेष रूप से केवल बाबू की सुख-सुविधा क लिए स्वैच्छिक सवानिवृत्ति ले ली है। सब-कुछ पैसा ही ता नहीं होता। फिर कौन-सा घाटा है इस सोदे मे। बेटे अपने-अपने स्टेशना पर काम कर रहे हैं। समय-समय पर आत-जात रहत हैं।

सभी की नजरा मे केवल, केवल बाबू ही हैं जो एक तरह से खुशनसीबी के प्रतीक हैं। न काइ फिक्र न काइ फिक्र का खाता।

फिर कान-सी फिक्र कोन-सा हिसाब लगाते रहते हैं। हमेशा से सामा की गिनती करत रहत हैं।

इतवार का दिन ह। बहू और बडा लडका आए हुए हैं। दो साल कै गुड्डे के साथ खूब उछल कूद मचाए हुए हैं। दोपहर के भाजन के बाद सभी बारी-बारी से सा गए हैं। व भी सो गए थे। लेकिन जल्दी उठकर टेबल पर आ बठे हैं। लिखने लगे ह उसी वैवाहिक विज्ञापन का उत्तर। मेरी देखने मे सुन्दर। व्यवहार-कुशल इसी साल एम०ए० । साच-साचकर, रुक-रुककर, धीरे-धीरे सब डिटेल्ज लिखे जा रहे हैं, अपने लैटर हैड पर। पीछे गाँव का नाम खानदान। लडकी की आयु बाईस वर्ष । फिर वह हिसाब लगाने लगे। हाँ-हाँ, ठीक है। बाइस वप ही की तो हुई ।

लिफाफा बद किया। एक जोरदार ठहाका लगाया। व्हाट ए फन। गली के मोड तक लैटर बॉक्स तक चले गए। लौटे तो आँखा को अँगुलियो से रगडते हुए। न जाने क्या फँस गया है जिसे कुरेद रहे हैं।

सत्रहवे दिन केवल बाबू के मुँह से स्वत फिर से वैसा ठहाका तो नहीं परन्तु आश्चर्य से भरपूर जोर से हँसी फूट निकली। इस तरह के ठहाके मे से छन-छनकर कहीं क्रदन स्वर भी गूँजता है। खूब। क्या मजे हैं और क्या गजब। कमाल कर दिखाया तुम डाकवालो ने। सामा को पास बुलाते हैं—"देखो मैंने उस दिन ऐसे ही एक विज्ञापन का प्रत्युत्तर लिख मारा। समझ रही हा ना ? दखो तो उसने भी कहाँ दूर-दराज क किस इलाके मे जाकर कौन-से दरवाजे पर दस्तक दी। बचपन का बेली। सुनो लिखता है—

प्रिय मित्र केवलकृष्ण।

तुम्हारी जय हो! मेरा यह पत्र पाकर तुम भी मेरी ही तरह अचम्भे से उछल पडोगे। मैं तो सचमुच बारबार उछल रहा हूँ। तुम्हारी भाभी सुनदा जिसे तुम नहीं जानते वह भी मेरे साथ बहुत खुश है। ऐसा भी कभी-कभी हो जाता है क्योंकि बुजुर्गों से सुना था कि रिश्ते हमेशा आसमानो से तय होते हैं। साफ कहूँ तो मैं एक तरह से तुम्हें भूल ही चुका था।"

सोमा ने अधीरता से टोका—"सीधे से बताओ क्या झमेला है ?"

"हाँ है तो फर्स्ट क्लास किस्म का झमेला ही। चुपचाप सुनती जाओ। बचपन का यार आगे लिखता है—'मेरी तरह तुम भी मुझे भूल ही चुके होगे। इस खत को पढकर अब तुम भी मुझे अच्छी तरह से याद कर सकते हो। याद करो जरा—कहेडी टेयला जहाँ हम दोनो तीसरी जमाअत से सातवीं तक साथ-साथ पढे थे। है कि नहीं याद? साँझी पतग। गिल्ली-डडे। डडो की हाकियाँ बैट। हाथो मे हाथ लेकर दूर तक निकल जाना। रात देर तक साथ-साथ सबक रटना। अच्छे नबर लाना। दोस्ती ऐसी कि दूसरे सारे लडके जल उठे। '

"लगता है सोमा, तुम ऊब रही हो। बहुत लबा ख़त है—बचपन की तमाम तफसीलो से लदा हुआ। खुशगवार यादो को खरोच-खरोचकर चमका रहा है। तुम सिर्फ आगे की बात सुनो। लिखता है—'अब अगर सयोग से इस पत्र के माध्यम से अथवा लडकी-लडके के जरिए हम दोनो के परिवार मिल रहे हैं तो इससे बढकर अच्छी बात भला क्या हो सकती है! मै तो बल्कि यह कहूँगा कि इससे अच्छी किस्मत किसी किस्मतवाले की भी नही हो सकती। '

"आगे लडके के बारे मे लिखा है—'उमग अग्रवाल। यहाँ से कोई डेढ सौ किलोमीटर दूर पी० डब्ल्यू० डी० मे अभी जूनियर एकाउंटेंट हैं। जल्दी ही प्रमोशन होनेवाला है। देखोगे तो खुश हो जाओगे। हमारी तरफ से रिश्ता पक्का ही समझो बचपन की पक्की दोस्ती की तरह। तुमसे बढकर मेरे लिए कौन हो सकता है! घर मे और कौन-कौन हैं? सबके बारे मे खूब विस्तार से लिखना फौरन। बहुत प्रतीक्षा रहेगी यार के खत की फिर से तुम्हे पाने की उत्कठा लिये

तुम्हारा वही अपना

—*प्रेमकृष्ण* ' "

पत्र सुनकर सोमा भावशून्य चुप है।

किन्तु केवलकृष्ण फिर से बोलने लगे हे—"साली यह भावुकता भी क्या चीज है! नाम भी हम दोनो के एक ही टोन के—प्रेमकृष्ण केवलकृष्ण। जैसे सगे भाई। मगर वक्त बहुत-कुछ बिखेरकर रख देता है। समझ लो, ऐसे दोस्त को भी

लगभग भूल ही बैठा था। किन्तु प्रकृति का एक नियम है कि जब दूर स पुरानी आवाज घटिया की तरह गूँजती हैं ता तमाम वही यादे, तमन्नाएँ समेटती हुई साथ ले आती हैं जो चाहते हुए भी पीछा नहीं छोडतीं कुरेदती रहती हैं, उम्रभर।''

सामा अब भी कुछ नहीं बोल रही।

थाडी चुप्पी के बाद वे फिर से शुरू हो जाते हं, टीस से उबरने के लिए—''प्रेमकृष्ण अपने बाप के साथ अपनी जमीन-जायदाद और व्यापार सँभालने आसाम चला गया था। पहलेपहल, महीने मे दो-तीन खत। फिर छह महीने म एक-आध। फिर मरे जीवन-सघर्षों के साथ खत गायब। वह खुद ही पूरा तरह से गायब। पक्की बात है उसके दिमाग से उसी तरह मैं भी भाग निकला हूँगा। ओर अब मरे हाथ मे एक लिफाफा है। मुझे झूले की तरह कभी आगे की आर ता कभी पीछे की ओर झुला रहा है—'तुम्हारे खत से भविष्य की सभावनाएँ चमक मार रही हैं ।' यह इबारत है प्रेमकृष्ण के खत की। मेरी इबारत क्या हो सकती है—आइरॉनिकल या भाग्य की विडम्बना।''

अब की सामा एक ठडी आह के साथ हँस देती है—''अपने साथ-साथ खूब बेवकूफ बनाया उस बेचारे को। मगर यह कैसी हँसी है जो आँखा में गीलापन लिये है?'' थाडा रुककर कहती है—''तुम्हारी ही भावुकता देखकर कभी-कभी दु खी हो जाती हूँ, वरना मैं तो सब-कुछ भूल चुकी हूँ। तुम्हारी इस बेवकूफी का पता अगर लडका-बहुआ को चल जाए तो क्या कहगे—बाबूजी अभी से सठिया गए। बस अब एकदम से चुप मार जाआ।''

मगर चुप्पी को ताडता प्रेमकृष्ण का यह तीसरा खत है—'तुम कुशल से तो हा न? क्या मेरे पहले खत नहीं मिले?' फिर से वैसे ही विवरण, प्यार याद, भविष्य और सुखद सपने।

इस पर केवलकृष्ण कुछ ऐसा लहजा अपनाते हैं कि प्रेमभाव भी बना रहे। न किसी क़िस्म का शक-शुब हो न मलाल बल्कि मामला आप-से-आप धीरे-धीरे दाखिल-दफ्तर हो जाए—'ठीक हूँ प्यारे दोस्त। बस जरा ज्यादा बिज़ी चल रहा हूँ। तुम्हे उसी गहराई से चाहता हूँ। प्यार के साथ याद करता हूँ। तुम ता वाकई मुझ पर अहसान कर रहे हो। फिर भी एक मिनट जरा रुककर साचो। रिश्ते चाहे कितने करीबी दास्ता या सबधियो के बीच तय करने की बात चलाइ जाए, हमारे शास्त्रा म लिखा है किंचित् धैर्य का परिचय देना उत्तम कार्य हाता है। जल्दबाजी कभी-कभी आदमी का मुश्किल मे डाल देती है। हमारा क्या है। अत तक गुजारा ता लडके-लडकी ने ही करना होता है। एक-दूसर का देख-समझ लगे ता हमारा

सर बचा रहेगा। है ना? मगर क्या करं। एक तो रास्ता भी दूर का है। वक्त तो लगगा। इसी बीच तुम लाग भी थाडा आर साच लो। सुना है कभी-कभी नए रिश्ते बनत ही पुरानी दास्तियाँ दरक जाया करती हैं।'

अब की जो प्रत्युत्तर आया जैसे लिफाफे मे अगारा रखा हुआ था—'साले वहाँ बैठा-बैठा किसका नखरे दिखा रहा है? तुम्हारी ऊलजलूल बकवास सुनने को नहीं बैठा हूँ। यह शास्त्रा की दुहाई देना कब से सीख लिया? कहीं ऐसा तो नहीं साचता कि लडक म काई नुक्स हागा तभी मिन्नत कर रहा हूँ? विश्वास की जमीन पर पैर रख। सीधे से अटैची के साथ भाभी का भी उठा ले और चला आ और देख ले अपने हानेवाले दामाद को। नहीं आते तो फिर हम ही आते हैं।'

अजीब भूत पीछे लगा बैठा। बदले मे केवलकृष्ण का थोडे लफ्ज़ा के हेर-फेर से वैसा ही उपदेश—'धरती अगर टिकी हुइ है ता सिफ विश्वास का आधार पाकर। ऐसी कोई बात नहीं है, विश्वास रखो। लेकिन कुछ और ठहरना लाजमी हा गया है। मैं दो महीने के रिफ्रेशर कार्स मे चदौसी जा रहा हूँ। तुम्हारे ख़ता से ऊर्जा प्राप्त हा रही है, उसके लिए शुक्रिया।

तुम्हारा केवलकृष्ण'।

मुश्किल से दा महीन पूर हुए कि वैसा ही खत। खत या बला?—

'इस बीच जब-जब उमग घर आया उसे सब-कुछ अपने-तुम्हारे बारे मे विस्तार से बताया था। बहुत खुश हुआ सब कुछ जानकर। तुम्हारी ही तरह कविताइ करता है। कहता है—रूप-रग पर क्या जाना। लडकी कैसी होनी चाहिए—इसकी व्याख्या मानदड उसक अपन हैं, सुसस्कृत भावुक, कल्पनाशील और उदार। मैं जानता हूँ, ये सब आजवाले यथार्थ बोध से थोडी अलग बात हैं, कल्पनाआ मे उडान भरने जैसी। पर यह आयु ही ऐसी हाती है। इसमे भावनात्मक स्तर पर जा हलचल चल रही हो उसके सामने जीवन के सार यथार्थ फीके होते हैं। वह तो मेरी और तुम्हारी बचपन की अप्रतिम मित्रता को आधार मानकर, लडकी क सस्कारयुक्त हाने की ठोस कल्पना मे खा गया। हा सकता है यही तुम-जैस लागो का कविताई हो। इसलिए तुमसे भी यही कहूँगा कि बहुत आगा-पीछा साचने से भी क्या मिलनवाला है। कुछ भी कहा, अतत शादी हाती ता लॉटरा ही की तरह है। मुझ पर भरासा रखकर भी 'हाँ' कह दा तो यकीन रखो घाट म नहीं रहागे। वैसे तुम मालिक हा।'

केवलकृष्ण सोचत हैं—यह साली भावुकता भी किसी बला से कम नही होती। मैं तो मैं वह बेटा भी बाप का बाप निकला। लोगा का लडका ढूँढने म

सौ-सौ पापड बेलने पडते हैं, और यहाँ इतनी दूर से कोई राजकुमार चला आ रहा है। उन्हे दफ्तर के रामबाबू का ही नहीं और भी कितने साधारण तो क्या रुतबेदारा तक का खयाल आता है, जो हर एक के सामने एक तरह से गिडगिडाकर यही कहते फिरते हैं—भाई जरा ध्यान रखना! कोई जान-पहचान का बारोजगार खानदानी लडका सूझे तो बताना। फिर अपनी लडकी की आयु, पढाई, कढाई, गृह-कुशलता आदि का बखान करने लगत हैं। वाकई आजकल ढग का वर ढूँढ निकालना दिन-ब-दिन अजब मसला होता जा रहा है। औरा का छाडा, अपनी पडोस की विनय बाबू की बिटिया सुधा को ही देखो। अपने रूप-रग ओर सद्व्यवहार से सभी को आकर्षित करने की क्षमता रखती है। वह बी० ए० करके घर मे बैठी है। छोटी-मोटी ट्यूशने करके कुछ कमा लेती है। विनय बाबू बीमार रहते हैं, तनखा कट जाती है। न तो बेटी को आगे पढा सकते हैं न लागो की दहेज की माँग पूरी कर सकते हैं। दिन-रात की परेशानी। सुधा कभी-कभी उनके घर आलू, चीनी या दाल जैसी चीजें उधार माँगने आ जाती है कि अँधेरा हो रहा है, बाजार बद हो गया होगा परसो तक लौटा देगे। दुनिया एसी ही रग-रगीली है। कहीं पर बाढ है तो कहीं पर सूखा। इन्सानियत की कमी नहीं है। फिर भी कदम-कदम पर धोखा फरेबों के जाल बिछे हुए हैं।

केवलकृष्ण सोचते-सोचते एक दिन उठ खडे होते हैं। देखूँ तो सही आखिर यह माजरा क्या है? नौकरीशुदा लडको को लडकिया की क्या कमी! क्या धोखा दिया जा रहा है या धोखा खाया जा रहा है? था तो पट्ठा जबरदस्त दिलदार। मस्त तबीयत। मगर क्या अब तक भी वैसा ही है? मगर यहाँ तो बात बाप की नहीं बटे की है। चलो चलकर देखते हैं। सैर-सपाटा ही सही! छुट्टियाँ भी लैप्स हो रही हैं। कुछ लेना-देना न सही पुराना जिगरी दोस्त तो मिलेगा। उस जब पूरी स्थिति स्पष्ट करूँगा तो मेरे साथ वह भी ठहाका लगाएगा। उसकी पत्नी और लडका भी जोर से हँसेगे। हो सकता है, मेरी सनक और भावुकता को लेकर दु खी भी हो उठे पर दुनिया बनी ही रोने-हँसने के सगीत मे है।

प्लेजर टूर का नाम पर केवलकृष्ण लबी यात्रा पर निकल पडते हैं। देखूँ तो सही प्रेम को अब कैसा लगता है। थल-थल शरीर, हँसता था तो गाल भी अदर-बाहर हात थ। अब कैस हँसता है? उसकी पत्नी कैसी है? लडका कैसो कविताइ करता है? अपन तो सब छोड चुके फिर भी यह साली अदर की कविताई ता पीछा नहीं छाडती।

लया यात्रा लया समय याता। कहीं एक दूसरे का पहचान न सके! इसलिए

भूरी फैल्ट पहने प्लेटफॉर्म पर उतरे और सीधे बीचवाले टी-स्टाल पर जा खडे हुए। यही तय था।

वही गोलमटोल शरीर, वही जजबाती रूप लिये प्रेमकृष्ण आ लिपटा तो छोडने का नाम न ले। खीं-खीं हँसी और आँखो म गीलापन। कौन कहता है भावुकता का जमाना लद गया। साथ खडी उसकी पत्नी भी मुसकरा रही थी और उमग भी आँखे झपका रहा था।

पहले वहीं, उसी टी-स्टाल मे चाय पी—"साला अकेला आ मरा। भाभी के साथ चलते शर्म आती है? चल निकल बाहर।"

स्टेशन के बाहर ड्राइवर ने कार के दरवाजे खोल दिए। बडे-बडे पेडो और फूलो से लदे मार्ग से होकर तलहटी मे अवस्थित बँगले मे पहुँचते ही केवल बाबू यात्रा की सारी थकावट भूल गए। बचपन मे रटी हुई प्रकृति-सौंदर्य की कविताएँ याद हो आईं। दोनो को बचपन की अजीब-अजीब-सी सनकें, दूसरो को चिढानेवाले नाम याद आ गए। पिनकी ड्रिल-मास्टर मॉनीटर हटका । ठहाको की गूँज के बीच, थोडी-थोडी दर मे श्रीमती प्रेम कुछ अलग-अलग किस्म की चीजे परोस लातीं—"खाइए ना भाई साहब।"

"साले खाना मत। लडकी के घर का नहीं खाते। शास्त्रो म लिखा है। हा-हा-हा-हा ।"

"तू तो कहता था, साथ पढनेवाली मोटे-मोटे काले होठोवाली पुई से शादी करेगा 'फिर इन्हे कहाँ से फँसा लाया? वाह क्या नाम। पुई 'पुई। याद तो आती होगी पुई?"

हू हू 'हू दोनो के स्वरो से एक-साथ गूँज पैदा हो उठती। चुहलबाजी थोडी थमती कि उमग अपनी लिखी नई-पुरानी कविताएँ ले आता। अद्भुत प्राकृतिक चित्रण और स्वप्न-परी के गुण-गान। क्या सधा हुआ मीठा स्वर। चेहरे पर आत्मविश्वास की चमक।

ऐसे घर को कैसे मना किया जा सकता है। मगर हाय, अगर सब-कुछ अनुकूल ही चलता रहे तो जिंदगी को *झमेला* ही क्यो कहा जाए? भाग्य की विडम्बना किसी को कहाँ पर लाकर केस डुबो देता है।

तीसरे दिन बडे उदास मन से केवलकृष्ण वापसी की यात्रा आरभ करते हैं। प्रेमकृष्ण भी अपने मुरझाए चेहरे पर हँसी की परते लादता हुआ कहता है—"फिक्र मत करो अब तो मिलते ही रहा करेगे।"

"हाँ-हाँ, पहुँचते ही तार दूँगा। फिर विस्तार से चिट्ठी लिखूँगा। ओ०के०,

ओ०के० बाय।" पैंट की जेब से रूमाल का निकलकर झूलना, फिर आँखा तक पहुँचना।

रास्तेभर गाडी म अवसाद छाया रहा। कुछ भी अच्छा न लगा। वहुत सारा खाना बाहर फेकना पडा। खिडकी से वाहर देखा—डूबते सूरज की निस्तेज, बुझी-बुझी-सी लाली। अपने-अपने पेडा की ओर लौटते हुए पक्षी। ऊँचे-ऊँचे पहाडा पर पहुँचने की कशमकश पर सोचते रहे। उमग का फोटो तो उन्होने चलने से पहले ही *थमा दिया अब मुझे कोन-सा वाला फोटो भेजना होगा?* बाहर यह दूर तक फैली केसी हरियाली है जो शरीर की नसो को सोख रही है।

थके-हारे घर पहुँचे। किसी शिशु की भाँति पत्नी की गोदी मे सिर देकर बिलख पडे। सोमा दुलारती रही। बालो मे अँगुलियाँ फेरती रही। समझाती रही। सब-कुछ भूलकर वर्तमान मे जीने की सीख देती रही। हल्के-से डाँटती भी रही—प्यार-भरी डाँट—"क्या ता उम हो गई और क्या बचकानी हरकते। हँसी आती है। हँसो—हँसो प्लीज। मेरी कसम "

केवल बाबू धीरे-धीरे मुसकराते हुए हाठ खालते हैं—"सचमुच सामा। अगर तुम भी साथ चलतीं। घर-बार, खासतौर से लडके को देख लेतीं तो लाड *आ जाता।*"

अब सोमा भी उनके साथ दु खी हो जाती हे—"जो किस्मत मे था। किस्मत को हम क्या कोई भी हो बदल नहीं सकता। पहले लडका हुआ। गुडिया की चाह अगली आशा की कडी बन गई। दूसरा भी लडका। फिर आगे देखने लग। फूल-सी बिटिया की आस। लडकी हुई मगर मरियल-सी। मुझको तुमन किसी तरह बचा लिया। डॉक्टर ने कहा था—आगे यह खेल बद वरना अनर्थ हो जाएगा। ऑप्रेशन किए देते हैं। उस मरियल-सी लडकी को लेकर भी रौनक छाइ रही *मगर मुश्किल से पद्रह दिन का साथ। खतरे की घटी ता शुरू से ही बज रही* थी। इतनी ही अगर चाह थी तो हिम्मत रखते। नही होने देते ऑप्रेशन। ज्यादा से ज्यादा म ही ता न रहती।"

"कौन-सा जरूरी था कि फिर बिटिया आती? और अगर तुम्ह ही खा बैठता तो किसके सहारे अब तक जिंदा रहता?"

"ता फिर मुझ देखकर लडका-बहुआ का देखकर सतुष्ट रहिए। अब *पोती आएगी। जितना कुछ हमे मिला है उतना विरला को ही प्राप्त होता है।*"

"तुम क्या समझती हा मैं अनभिज्ञ हूँ? मै भावुक नही हूँ। फिर भी शुरू स ही बस ऐसे ही यदा-कदा विचार आ जाता है। स्कूल जाती नन्हीं बालिकाआ का देखकर कि हम भी उसे दाखिल करा रहे हाते। अब तीसरी म पढ रही हाती।

ग्राउँड की तरफ से कभी निकलना होता है तो अनायास एन सी सी की पोशाक पहने लडकिया का देखने खडा हो जाता हूँ। अगर वह होती ता इनके बीच कैसी लगती ? सलोनी गुडिया रानी।''

''हाँ हाँ जा हमारी नहीं थी जा है नहीं, फिर भी वडी हो रही है। आयु, सन्, क्लास बी०ए०, एम०ए० मैरिजेबिल और फिर मैट्रिमानियल। सचमुच आप भावुक नहीं हैं।''

''सोमा देखो ता खता म भी जान होती है। कहाँ आ पहुँचा ? कौन मानेगा इस पागलपन के खेल का ?''

''यह यथार्थवादी विचारधारा का युग है। बिल्कुल चुप मार जाइए। समझ जाएगा कि रिश्ता आपको पसद नही।''

''बिल्कुल यही होगा। चैप्टर क्लाज्ड।'' कहते हुए केवलकृष्ण पीछे आई डाक देखने लगते हैं। ऑफिस फान करने लगते हैं—''आ गया हूँ, पर कुछ रोज और छुट्टी पर रहूँगा।'' नहा-धोकर सोमा के साथ शाम का घूमने-फिरने बाजार स कइ तरह के सामान लाने के कार्यक्रम बनाते हुए, आराम के मूड मे आ जाते हैं।

बहुत-से विषय है पति-पत्नी के पास, चर्चा क लिए, जैसे आपस मे नव विवाहित दपती, बालते ही रहते हैं, पुरानी-नई बात। पीछे उनके कौन-कौन आया ? किस-किस का फोन ? पिछली गली के मोहन बाबू के लडके की शादी थी। बहुत बुरा मान रहे थे कि केवल बाबू इन्हीं दिनो शहर से निकल गए। पर उसी विषय पर जा दोनो के दिलो-दिमाग पर छाया हुआ था उससे दोना ही बचते फिरे। एक प्रकार से सब-कुछ कहते-बालते हुए भी जबान बद रखे रहे।

उस दिन बॉस की लडकी का विवाह था। बरात आने से पहले ही शगुन का लिफाफा पकडाकर दोना जल्दी लौट आए—किसी दूसरे विवाह म भी शामिल होना है।

सोते समय केवलकृष्ण बोले—''हमारी चुप्पी से क्या होगा ? तुम उस पट्ठे का नही जानतीं, किसी दिन आ धमकगा। लडकी ता क्या अपना मुँह दिखाने लायक ही नही रहूँगा। लीचड है साला। कहगा—कहाँ है मेरा बच्ची ?''

''कहूँगी—ससुर से शरमाकर चारपाइ क नीचे छिप गई है।''

केवलकृष्ण हा-हा कर उठत हैं—''ता तुम्हीं निपट लना।''

सामा भी जार से हँसती हुई कहती है—''कहो तो पडास का सुधा को बुला लेगे।''

''हाँ यही करगे—देख साले अपनी बहूरानी का।''

सहसा वहाँ कुछ देर के लिए मौन छा जाता है। फिर केवल बाबू धीरे से मुँह

खोलते हैं—"यह बच्ची मुझे कई बार अपनी ही बच्ची की तरह लगी है—भोली मृदुभाषी गुड़िया-सी सुदर।"

"तो चलो यही सही। कर दो कन्यादान! शास्त्र मे लिखा है, कन्यादान बिना जीवन सार्थक नहीं होता। अपनी लडकी न होने पर बहुत-से लोग ऐसा करते हैं।"

कमलकृष्ण जँभाई लेते हुए बोल उठते हैं—"कई बार मन मे ऐसा ही विचार सुधा को लेकर कौंधता रहा है। उस विचार का सही स्वरूप तो तुम ही दे रही हो। वैसे मेरे सामने ही देखते-देखते बच्ची से जवान हुई है। प्रेमकृष्ण का इस लडकी की गारटी भी दे सकता हूँ।"

"और विनय बाबू को प्रेमकृष्ण के लडके की।"

"हाँ, वह भी।"

"तो बुला लाऊँ विनय बाबू को ? सुबह फोन करने आए थे। उस वक्त डायलटोन नही आ रही थी, अब ठीक हो गया है।"

"पागल हो गई हो क्या ?"

"आपके साथ बनना ही पडेगा।"

प्रेमकृष्ण का खत।

चार-पाँच दिन बाद वे विनय बाबू और उनकी पत्नी से सविस्तार सब-कुछ कह डालते हैं कि अगर यह सबध हो जाता है तो सुधा बिटिया राज करेगी।

सातवे दिन विनय बाबू कह उठते हैं—"जैसा आप मुनासिब समझे आप ही की बच्ची है। मेरी हालत आपसे छिपी नहीं है। पर क्या यह आपके मित्र के साथ धोखा नहीं होगा ?"

"वह सब मुझ पर छोड दीजिए। आप तो देखते रह जाएँगे—कैसे शानो-शौकत से शादी करता हूँ! हमारी चाँद-सी बिटिया को देखते ही आँख मूँदकर धोखा खाने को लालायित हो जाएगा।"

घर मे घुसते ही उछल-से पडे। ठहाका लगाते हुए बोले—"सोमा बधाई हो! विनय बाबू मान गए हैं।"

अब की सोमा गभीर हो गई है—"खूब सोच-समझ लो। बात बिगड गई तो चारसौ-बीसी का मुकदमा भी चल सकता है।"

"भई मैं उसे कहाँ धोखा दे रहा हूँ! जब वह साला खुद ही धोखा खाने पर तुला हुआ है तो इसमे मैं क्या कर सकता हूँ!"

सोमा उन्हे घूरती है तो वे फिर से ठहाका लगाते हैं—"साली यह सारी

जिंदगी ही क्या धोखा नहीं है ? उस गुडिया ने हमारे घर आते-आते क्या पूरे आठ साल नहीं लगाए थे ? आई भी तो सिर्फ पद्रह दिनो के लिए। क्या उसने हमे धोखा नहीं दिया ? धोखे से ही मुझसे खत लिखा गया। धोखे से ही खत उस फरेबी के घर जा पहुँचा। बिना ज्यादा सोचे-समझे माँ-बाप और बेटा धोखा खाने को आमादा हो रहे हैं। मैंने "मेरा तो पूरा रिकॉर्ड देख लो—आज तक किसी को धोखे मे नहीं रखा। तुम जरा धैय रखो और देखती चलो। उस प्रेमकृष्ण गधे की गर्दन पकडकर सब-कुछ साफ-साफ बता दूँगा—ले साले खा धोखा और ले-जा चाँद-सी बहूरानी को। तूने खुद ही कहा था कि उस इलाके मे अपनी कल्चर की लडकी मिलना मुश्किल हो रहा है, इसीलिए तेरी मदद की। पडोस की लडकी को अपनी बेटी बनाया सिर्फ दोस्ती का फर्ज अदा करने को।"

पति के लये होते जाते भाषण के बीच सोमा नम आँखो से एकटक देखती जाती है, पति के चेहरे के हाव-भाव।

"इट इज नॉट धोखा बट ए ग्रेट फन, रादर एडवेंचर। कहूँगा—तू अपनी कमजोरी की वजह से धोखा जानबूझकर खाना चाहता है, फायदेमद धोखा। तो कौन रोकता है ?"

"आपको तो बिना पिए नशा चढ गया।"

"जब कन्यादान ही मैंने करना है तो फिर कैसा धोखा ? तुम देखना तो सही। सारा किस्सा जानकर वह कैसे हँसेगा—हा हा हा हा !"



स्वर्ग
की
खोज

कृत्हा पर पटती है—"फिर जबान खाली ?"

राजा अब की कुछ नहीं बोलता। निरीह आँख झुक जाती हैं—नरक म स स्वग का आस लगाए।

शाम तजी स अन्तिम साँस ले रही है। लॉन के दरख्ता के पत्त कटकड करत हुए टूटते हैं। पक्षी फडफडाते हुए अपने घासला मे दुबकन लगते हैं।

मालिक कुछ देर के लिए सब चीजा पर सरसरी नजर दौडाता ह। फिर बेदम नशा की-सी हालत मे अपन बड-हॉल म जाकर उन्हीं कपडा स पड जाता है। क्या पता सचमुच ही हा मेरी ओलाद! याद नहीं आता। उम्र की किस दहलीज से जहाँ-तहाँ टाँग फँसाने की लत पड गई थी। बाप मना न करता। फख्र करता। यह सब पहली बार नहा हुआ। एसी आर इसी तरह की घटनाआ क अशा का क्रमबद्ध नहीं किया जा सकता। मुसलसल दो-ढाई साला का ऐसा सिलसिला आपस म गडमड ह। न जाने क्या पहले घटा और क्या याद मे!

आह! चन्द साला से जैसे ढलान पर आ गया हूँ। इधर इस हरामखार का चेहरा मस क्य से दिखने लगी हैं। तभी वह साली हरामजादी । कितना खिलाआ कितना पसा लुटाआ। बेगेरत बदजात कहीं पर भी जाकर सूँघन लगेगी कुतिया की तरह। धाखेबाज बेवफा ! काई भी आज भरासेलायक नहीं रहा। दीवारा आर पेडा स भी चाकस रहने की जरूरत है। न जाने ऐसी छिनाल कब से बटाइम आ मरती हागी। आर यह दामन का साँप! मेरे ही पलँग पर! छि ! ठाक ही कहता हागा राजा कि वही पहले झपटी थी। मगर यह बार-बार अपनी ओकात क्या भूल जाता है ? अपनी काठरी मे क्या नही बना रहता ? महल के हर काने म कदम जमाता जाता है, जैसे यही नवाब हा। कब तक माफ करूँ ? अब तो आप माफ न करूँ तो क्या करूँ ? कुछ राज पहले खेतचन्द बाबू मिलकर गए हैं। फकीरा सरदार खेतचन्द का खास दोस्त भी बाजार मे दिखा था जरूर किसी तरह राजा स सम्पक कर गए हागे मेरी जूती से! साइड-टेबल की तरफ हाथ बढाकर बडा पैग तैयार कर गटक जाता है।

इधर राजा जैसे सब-कुछ भूलकर या सिर्फ भूलने की गरज लिये जा भी काम सामने सूझता है, करन लगता है। वाशिंग मशीन मे कपडे डालकर चालू कर देता है—घर्र-घर्र। आधुनिक उपकरणा से घर की सफाई करने लगता है। रात को क्या पता मालिक का फिर किसी पार्टी या क्लब म जाना हो। पॉलिश से जूते चमकाने हैं। कसे-कस कपड पहनाकर मालिक को एकदम जवान बनाना है। मशीन की घर्र-घर्र आवाज कुछ ज्यादा ही दुखदायी हाकर काना से टकराए जा रही है। मगर यह सब आज पहली बार ता हुआ नहीं। अब ता कई बार ऐसी

घटनाएँ एक अलग तरह का रस देने लग गइ हैं। फिर क्या कभी-कभी यह स्वर्ग, नरक लगने लगता है ?

आखिर कब तक ऐसा खेल चलता रहेगा? उसे लगता है घर्र-घर्र के बीच कही खट-पट की ध्वनि गूँजी हे। शायद मालिक उठ हैं। मालिक अगर फिर से निकल गए ता फिर कोई ठिकाना नहीं। देर रात तक बिना किसी भूल-चूक के जागना होगा। गिलास बातले जग चमका-चमकाकर टेवल सजानी हागी। बीच म गुलाबों का दो वक्षावाला गुलदस्ता बैठाना हागा। जरूर कोइ गुलाबी गालावाली मेम लेकर आएँगे। इसे ता साले तूने जूठा कर दिया, कहने से पहले उस पतली-दुबली खूबसूरत नौजवान ओरत की कमर पर लात मारकर उसे बाहर कर दिया था। फिर मुझ पर पिल पडे थे। मालिक जो ठहरे। मगर कब तक? मालिक को अगर मालिक समझना छाड दूँ तो ? तब इस नरक मे से स्वर्ग ।

घर्र-घर्र के बीच राजा का माथा भन्नाता है—इससे पहले चाहे जितनी जगह जूठी हुई हो पर अपने ही नौकर के मुँह से हाजमा चरमरा जाता है। सवाल वही मालिक ओर नाकर का हे। सवाल गैरत का हे। उस गेरत का जिसके मा दड सिर्फ शासक के पास होते हैं। जाने से पहले वह कटाक्ष कर हँसी थी— आप तो सुना है अपनी पहली औरत को भी रखैल बनाकर ल आत हैं। अब आपको हाथ लगाऊँ कि न लगाऊँ? आपके काबिल नहीं रही। पर मेरी फीस मालिक ने तिलमिलाकर पैंट की जेब मे जितने भी नाट थे उसकी ओर उछाल दिए थे। बदजात औरत गाड दूँगा। मुँह बन्द रखना वरना तू नहीं तेरी लाश हागी। किसने तुझसे कहा था मेरी गेरहाजिरी मे इतनी जल्दी आने का? कहते-कहते वे हकलाने लगे थे। वह झुक-झुककर नोट समेटने लगी थी। अपने ढीले ब्लाउज में स एक झलक दिखाते हुए फिर मुसकराई थी और तेज कदमा से रवाना हा गई थी।

तेरह साढे-तेरह का था तब से आ बसा था इस अजूबी दुनिया मे। धीरे-धारे आँख खालता रहा ओर तरह-तरह के नजारे देखता रहा। धीरे-धीरे सब कुछ और-और स्पष्ट हाता चला गया।

तिलिस्मी व्यापार-जगत।

मगर वह नगरी भी कोन-सी जादूगरनी से कम थी। पिशाच नगरी

हरियाणा और पजाब की सीमा-रेखा पर बहुत अन्दर की तरफ एक गाँव है किंदरिया। मुड्डू का सब-कुछ याद है। वह उसी किंदरिया गाँव का बाशिंदा है। पर एक के बाद एक लाख ठाकर खाने के बावजूद उसने कभी वहाँ लौट जाने की नहीं साची। साचना ता दूर की बात उसने भूल से भी कभी किसी से उस गाँव का

जिक्र तक नहीं किया। अगर मालिक का पता चल जाए तो कल की बजाय आज ही गाडकर रख दे। बस बहुत बाद में एक दफा खेतचन्द बाबू के सामने मगर पहले तो खेतचन्द बाबू ने ही किंदरिया का नाम लिया था तब। बोले थे—'मेरे बाप-दादाओं ने किंदरिया का पानी पिया हुआ है। वहाँ के हाकिमों के जुल्मो-सितम सहे हुए हैं। बाद में मेरे बाप ने एक-एक से ढंग से बदला लिया था। मुझे माँ को और छोटे भाई को उन जालिमों से बचाने के लिए शहर रवाना कर दिया था और उनका लूट-लाटकर उनकी असली औकात दिखा दी थी और खुद भी वहाँ से निकल लिये थे। मैं भी कहूँ, अपन दोनों की शक्ल गोरा-लम्बा कद क्या एकसार है। हाँ-हाँ हई।' वे जोर से हँसे थे—'अपन दोनों ने ही किंदरिया का पानी पी रखा है वहाँ के उत्पात सह रखे हैं।' हाँ, इससे आगे नहीं बोला था मुडू। जानते होंगे द्वारका पटेल और उसके लाडले का।

बेशक एक के बाद एक कई नरकों से बहते हुए उसने इस मंजिल में शरण ली थी। मगर अब भी उसके मन में यही ठोस धारणा घर किए हुए है कि अगर पूरी दुनिया में सबसे बड़ा नरक कोई है तो वह किंदरिया ही है, जबकि वह यह भी नहीं भूला कि किंदरिया की धरती ढेरों अनाज उगलती है। शीशे के मुआफिक पानी की नदी उसी गाँव में बहती है। पेड-पौधों पर जिस तरह का संगीत पक्षियों को सुनाते वह अब कभी-कभी वी सी आर/टी वी में देख-सुन लेता है वैसा असली संगीत पेडों की डालियों का झूमना-गाना उसी के गाँव के सहज-सुलभ दृश्य हैं। सेठों, जमींदारों महाजनों, पटवारियों की वहाँ बड़ी-बड़ी हवेलियाँ-चौपाल हैं, बाग-बगीचे हैं, यानी किंदरिया गाँव हर तरह से भरा-पूरा स्वर्ग है। मगर हर स्वर्ग में जरूर एक नरक निवास करता है। द्वारका पटेल जैसे लोगों के लिए किंदरिया पुश्त-दर-पुश्त स्वर्ग बना हुआ है। वहीं किंदरिया मुडू जसे खानदानी के लिए हमेशा नरक ही रहेगा। उसी की आँखों के सामने बापू का कोडे लगे। मामू अपनी जमीन छुडवाने की फरियाद लेकर पटवारी के द्वार गया तो जमींदार के कारिंदों ने जंजीरों से बाँधकर चार रोज तक भूखा-प्यासा रखा। कन्हैया भैया की बरात लौटी तो डोली द्वारका पटेल के दरवाजे पर क्या रोक दी गई? वजह वह नहीं समझता था। अब समझने लगा है। साथ ही इसी प्रकार के दूसरे परिदृश्य उसके दिमाग के रास्ते स्पष्ट होते रहते हैं। भले ही तब व्याख्याओं-ब्यौरों को कह पाने में असमर्थ था लेकिन यह गाँव उनके रहने लायक नहीं, पग-पग पर जलालत है—यह तो बालमन में बैठ ही गया था। माँ बेगार करते-करते सूखकर काँटा हो गई थी। जो छोटा भाई पैदा हुआ था लँगडाकर चलता था। उसने बापू से कहा था इस नरक को छोड देने के लिए। बापू का जवाब था—'बहुत

उधार है सेठा का कोई निकलने नहीं देगा। फिर अपनी धरती माता को छोडकर जाने का मतलब नरक का जाना होता है। भगवान गरम कडाहे म डाल देते हैं।' मुड्डू क पास शब्द नहा थे। यह दूसरी-तीसरी कक्षा म पढता था जहाँ उसे मास्टर और खाते-पीते घरा क दूसरे बच्चे हिकारत से देखते थे। फिर भी उसने अपनी बुद्धि पर जोर डालकर बाप को तर्क दिया था। आशय यही था कि काल्पनिक नरक से यह नरक भयकर है। जो साहूकार हम पग-पग पर रौंद रहे हैं, उनसे वफादारी कैसी ? परन्तु बाप और मामू भी टस से मस नहीं हो रहे थे। धरती माँ तो धरती माँ साक्षात् सगी माँ भी दगा कर गई थी। माँ चल बसी थी। अधकार छा गया था।

दीर्घ अधकार भी अपने से घबरा उठता है। रोशनी की तलाश करता है। अँधेरी रात म विलीन मुड्डू, सबकी नजरो से बचता-बचाता भाग निकला नरक नगरी से किसी अनजान स्वर्ग की इच्छा सहजे। निकट के किसी शहर म नहीं, बल्कि एकदम दूर-दराज के इलाका म पडाव डालता चला गया। एक जगह दूसरी जगह तीसरी चौथी अपने-आपको आजमाने की धुन लिये। साफ-सफाई घरा की दुकाना की होटल-ढाबा पर साइकिल वाला के यहाँ। हर जगह अपने को घिसाता-खपाता रहा। जहाँ-तहाँ मिले अखबारा के टुकडा मे आँख गाडता रहा।

रद्दी म आई किताबा मे से अपने मतलब की खुराक खोजता-निकालता सात से साढे दस साल का हो गया। नाइया की दुकाना पर बाल साफ करते-करते बाल बनाने लगा। कुछ शरीफजादे उस घर पर बाल बनवाने ले जाते। हर जगह के बाल साफ कराते। देर रात तक सतो-साधुओ क प्रवचन सुनता, नरक से स्वर्ग की राह ले-जानेवाले। राजनेताओ के भाषण सबकी झोली म रामराज उँडेल रहे होते। जैसे हर जगह स्वर्ग-नरक, नरक-स्वर्ग ताक-झाक कर रहे होते।

तब उसकी भेट खेतचद बाबू से हुई। खेतचद बाबू अकसर साथ की दुकान से मौसम के मुताबिक आइसक्रीम खाने जूस या कॉफी पीने चले आते थे और इसी तरह पद्रह-बीस दिन मे बाल बनवाने, उसी नाई की दुकान म आ बैठते। मुड्डू उनके बाल ऐसे सलीके से बनाता दाढी-मूँछों का ऐसा सहजता कि खेतचद बाबू शीशे के सामने अपने-आपको राजकुमार पाते। एकदम तरोताजा।

खेतचद बाबू की मुलाकात मुड्डू के सूनेपन का कम करने लगी। उसम थोडी तरग भरने लगी। वे उसे कलाकार मित्र की सज्ञा से सम्मानित करते। थोडे ही समय बाद और खुल गए। उसकी बात सुनकर दग रह गए। पिद्दी-सी उम्र और इतना ज्ञान-अनुभव। वे उसे हॉस्टल ले जाने लगे। दूसरे बहुत-से मेल-

मुलाकातिया के यहाँ भी। वहाँ मुडू कभी हजामत भी बना देता और अच्छा मुआवजा हासिल कर लेता।

खेनचद बाबू एम०ए० के छात्र थे। छात्र नेता थ। राजनीति मे अच्छा-खासा दखल भी रखते थे। और भी जाने कहाँ-कहाँ किस-किस जगह आना-जाना, उठना-बैठना, पीना-पिलाना था। अखबारनवीस, प्रेसवाले वकील, डॉक्टर, लेडी डॉक्टर सब उनके *अपने आदमी* थे। कभी-कभी किसी से जितने पैसे चाहते उठा लेते। *काइ उज्र न करता।* 'ले यह सब तू रख ले।' वह मुडू से कहते—'झोली भर ले। मैं इन सबकी पोल जानता हूँ। हाँ, तू हर तरह का पढना-लिखना जारी रख। तू ता यार कमाल का उस्ताद है। एक दफा सुना हुआ, पढा हुआ सब दिमाग मे एकदम माफिक फ्टि। तू ता वकील होता। तू तो स्मगलिंग-मास्टर हाता। तू ता राजनेता होता। तू ता पूरे देश ज्या कहते हैं अपने राष्ट्र को इन कधों पर उठाकर अच्छे-अच्छों को नचा सकता ह। जिसे चाहे झटका दे मकता है। तेरी कावलियत हमने शुरू से ही पहचान ली थी तभी ता दास्ती हो गइ अपने से। थोडा-सा और वक्त चाहिए तुझे। हम तुम्हारे पीछे हैं। तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड सकता।'

समय गुजरता गया। एक-दो साल फेल होकर खेतचद बाबू ने एम० ए० पास कर लिया। बोले—'हम बाईस से ऊपर के हुए। बस इतने कि शादी लायक। बाप ने बुला भेजा है। माँ ने कहलवा भेजा ह। एक लौंडिया शादी के लिए तैयार बैठाए हैं। तू तेरह का नही साढे तेरह का। मगर नहीं तू तीस से ऊपर का है। तू सधा हुआ जवान। तू प्रेत है। एकदम इसी दुनिया के काबिल। मौका-शिनाख्ती चाहिए तुझे। *फिक्र मत करना। तुझे यूँ फालतू लागा के बीच झुलता नहीं छोड* जाएँगे। ठीक-ठिकाने बैठाकर ही हम तुष्टि हागी। यारी निभाएँगे पूरी। रम जाए ता ठीक नहीं ता आएँगे बीच मे, अगर तुम्हे जरूरत हुई तुमने आवाज लगाई। मगर भरासा है कि तुम खुद ही अकले युद्ध लड लाग। फ्कत किताये पढ-लिख लाग, सब घास काटते हैं। तुमने जो-जो पढा है, उस विद्या से सबको घास खिलाकर जमीन चटवा दोगे। जब कोई अच्छा मोका हाथ आए, हमे भी दावत देना।'

'आपक पैरा को जूती हूँ खेतचद बाबू। कहाँ चढा रह हैं? गुब्बारे म इतनी हवा न दे कि फट पडे।' कहते-कहते आँसुआ से सराबोर मुँह उसने खेतचद बाबू क कदमा से लगा दिया था।

'तेरा पावर का तुमस ज्यादा हम जानत हैं। हाँ वक्त लग सकता है। धैर्य रखने म कोई नुकसान नहीं होता। जल्दी का काम शैतान का काम। हथौडा वक्त

पर चलाया जाता है समझे ? द्वारका पटेल का लडका हमे नहीं पहचानता। वहीं चलना होगा।'

'जी कुछ समझा नहीं ?'

'अवसर आने पर सब पहचान लोगे। हमे भरोसा है। गाँववाले कपडे पहनो और चलो हमारे साथ। और नोट कर लो यह-यह पते और फोन नबर।'

तब खेतचद बाबू मुड्डू को लेकर गाडी का लबा सफर तय कर मालिक के पास जा पहुँचे थे। मालिक के कई *उर्फ* थे—नवाबे-हिन्द शहशाह, गुरुदेव, और भी जाने क्या-क्या। उन्होने बैठे-बैठे हाथ ऊँचा उठाकर खेतचद बाबू का स्वागत किया था और चकित भाव से ग्रामीण बालक का अध्ययन कर रहे थे—'यह कौन है ?'

खेतचद बाबू ने मुड्डू से कहा था—'पैर छू। आज से यह तेरे मालिक हैं। हर तरह से राजी रखना। गलती करेगा तो खाल खीच ली जाएगी। खुश रखेगा तो जिंदगी बन जाएगी रे।' फिर वे नवाब साहब की तरफ देख मुखातिब हुए थे—'यह मुड्डू है खौफजद लडका। बेचारा मुसीबत का मारा है। आपने कभी जिक्र किया था बिल्कुल वैसा ही। भोला पछी ढूँढ निकाला आपके लिए। साचा आप ही की रिआया के काबिल है। जो दे दे उसी मे राजी। मुँह मे जबान नहीं।'

'बस-बस यही-यही।' पान-इलायची से भरे मुँह से बहुत-सी हवा छोडते हुए, उन्होने लफ्जो को कील की तरह ठोका—'जबान को ही काबू मे रखने की ताकीद करते जाओ। यहाँ खाने-पीने-ओढने की कमी नहीं। हाँ आँख भी ज्यादातर बद रखनी होगी जो हमारे मुँह के इशारे से रत्तीभर खोलनी होगी वरना बद।' फिर उन्होने अपनी सख्त हथेली से मुड्डू का कधा दबाया था—'हमारी बात को अच्छी तरह से समझ गया तो तेरी मोज ही मोज नहीं समझा तो आफत। बेहतर हो इसी दम वापस चला जा। बाद मे कोई गुजाइश नही। कोई गुस्ताखी कोई गैरजिम्मेदाराना हरकत काबिल-माफी नहीं होगी। नतीजा अभी से जान ले—यहीं पर मौत। तू तो क्या तेरी लाश भी इस बँगले से बाहर नहीं जा पाएगी। सोचने के लिए वक्त चाहिए तो बोल।'

'नहीं।'

'क्या मायने इस नहीं के ?' कहकर वे रुके—'तू उधर क्या देखे जा रहा है ?' गलती से पहली बार आगे का दरवाजा खुला रह गया था। अपने भारी शरीर के साथ छलाँग लगाई। दरवाजा बद कर दिया—'हाँ क्या बोला नहीं रुकना है ?' आवाज मे वही चपचप-भूँ-भाँ।

मुड्डू की समझ मे आ गया था वही मालिक से ज्यादा दानिशमन्द है। तब

उसने कद्रे झुकते हुए स्पष्ट किया था—'नहीं, मुझे साचने का वक्त नहीं चाहिए। फैमला आपके कदमा म बने रहने का है।'

नवाब साहब ने अर्थभरी दृष्टि खेतचद बाबू पर डाली। उनकी बाँह पकडकर बगल के कमरे म बडी मेज के सामने जा बैठे। शीशे की बडी अलमारी से बोतल निकाल लाए थे—'लौंडा है तो भरासेमद। मेरा मतलब है पी०ए० और राजदाँ हागा हमारा।'

'एकदम भरासेमद आर फरमाँबरदार। बेफिक्र रह।'

पीने-पिलाने के बाद वे वहीं पर पहुँचे जहाँ मुडू बैठा था।

'तो फैसला पक्का ?'

'जी सरकार!'

'आज से तू राजा हुआ। भूल जा मुडू को।'

'पैर छू।' खेतचद बाबू ने फिर से पैर छूने को कहा।

राजा ने दोना के पैरा पर हाथ रखकर माथे पर लगाए थे। खेतचद बाबू चल गए थे।

अजीब-सी दुनिया म पहुँच गया है मुडू, राजा बनकर। चारा तरफ नग्न-अर्धनग्न आरता की तसवीरें माटे-माटे बडे फ्रेमा मे जडी हुई। बीच मे इसी तरह की सगमरमर की चिकनी-चिकनी आदमकद प्रतिमाएँ, झरने मे खडी स्नान कर रही हैं। साथ खडे कलात्मकता से गढे नुकीले खभे, बहुत बडी स्क्रीन का टी०वी० सैट वी०सी०आर० अनगिनत कैसेट। दीवारा के सहारे बडी-बडी अलमारिया मेजा पर कइ रगा की बोतल। एसे लागा या घरा के बारे मे, उमने भले लागा और साधु-सता से सुन रखा था—नरकद्वार होते है। अनाप-शनाप पैसा ईमानदारी से नही मिलता। औरत शराब यूँ ही बहती नदिया नही हैं।

यह सुन्दर उपवन। शीशे की तरह चमकता तालाब, झरना से उड-उडकर स्पर्श करती सुगध पूरे वातावरण को सुखद बनाता यह सब-कुछ। अगर कही स्वर्ग है ता यहीं है। फिर जीवित मूर्तियाँ भी आती हागी यहाँ। इन्द्र-सभा जैसा स्वर्ग। अगर यह सब किसी की नजर मे नरक है तो वही बात—हर स्वर्ग मे एक नरक होता है और नरक म स्वर्ग। तब इस नरक मे मालिक ने स्वर्ग बसा रखा है।

अजूबा ससार।

स्वर्ग-नरक का विचित्र सम्मिश्रण।

नौकर देखता है।

मालिक ठाट-बाट से रहता है।

नौकर डरा-डरा भयभीत है। जिज्ञासा लिये देखता है।

मालिक शान के साथ मुँह मे खुशबू भरता रहता है।
नौकर की नजर मालिक की नजरा से मिलती हैं। सहम जाता है।
मालिक बिना बात डाँट दता है।
नौकर नजर झुका लेता है।
मालिक कार बदलता रहता है।
मालिक कार म जा रहा है।
मालिक कार से आ रहा है।
दिन म एक स दस चक्कर।
नाकर चुपचाप हुक्म की तामील मे खडा रहता है।
मालिक आए दिन नया सूट सिलवाता है।
मालिक के साथ गहना से लदी खूबसूरत मासल औरत है।

राजा के लिए एक और चीज जो इस अजूबे ससार का अग है वह हे ट्रका का काफिला। ट्रका का काफिला कुछ दिना या महीना के अतराल से आता-जाता रहता है। घर्रर-घर्रर घूँ-घूँ, चीं-चीं की आवाजा से राजा के कान खडे हो जाते हैं। मगर यह टका का रहस्यमयी खेल महल के बाहरी इलाके के गोदामा मे चलता रहता है। क्या उतरता है, क्या चढता है, राजा कुछ ललचाई नजरा स जानना चाहता है। समझना चाहता है इस तिलिस्म को। लेकिन उस तरफ उसका आधा कदम भी मालिक को बर्दाश्त नहीं। इन क्रिया-कलापा की देखभाल मालिक स्वय ही करता-कराता है।

ट्रक के साथ आए लोगा तथा लगभग सभी के लिए महल का अन्दरूनी भाग निषिद्ध हे वहीं राजा के लिए बाहरी इलाका निषिद्ध है।

मालिक के पास तरह-तरह के लोग आते हैं—पेसा पहुँचानेवाले शतरज खेलनेवाले राजनीति पर चर्चा करनवाले पीने-पिलानेवाले, अपना हिस्सा माँगनेवाले। ये सब महल के शुरूवाले कमरे मे बैठते हैं जहाँ पहले-पहले दिन राजा का एक तरफ बिठाकर मालिक खेतचद बाबू को ले गए थे और शराब पिलाई थी।

बहुत कम हैं मगर हैं धमकी देनेवाले छापा मरवाने की। रगे हाथा पकडवा देने की। इज्जत की लुटिया डुबो देनेवाला की।

राजा को अपना हिस्सा माँगनेवाले धमकियाँ देनेवाले ही भाते हैं। वे अपना हक माँगते हैं। यानी कि इस नरक से स्वर्ग चाहते हैं।

मगर राजा ता कुछ भी नहीं सुनता। कुछ भी नहा देखता। चाहकर भी कुछ नहीं चाहता।

यहाँ पर जिंदा टिके रहना है।

स्वर्ग का इतजार करना है।

और अब धीरे-धीरे, लबे समय बाद, आए दिन मालिक की समझदारी सटपटाने लगती है, छटपटाने लगती है।

आए दिन वजह-बवजह राजा को पीट दता है। साला जासूसी करता है। हर चीज पर, हर बात पर बारीकी स निगाह रखता है, एकदम मासूम बनकर। राजा खूब-खूब काम करक दिखाता है। सवा-सुविधा पर ध्यान दकर मालिक का मन जीतना चाहता है। बुद्धू बनकर, बुद्धू बनाता है। लेकिन नहीं जानता मालिक को। महान् राजा या शहशाह कह देने स मालिक झाँसे म आनेवाला नहीं। सब-कुछ पोशीदा रखने क वास्त ही तो एक ही नोकर रखता है मालिक। पहले भी, अब भी। एक स आराम स निपटा जा सकता है। भेदी हुआ, और गाडा गया। तू कौन-से बाग से आया है? तू डाल-डाल मैं पात-पात।

अब मालिक ही जासूसी करने लगा है।

आवृत्ति। पुनरावृत्ति--

अचानक लौटा। रगीन किताबा के पन्ना मे खोया हुआ पाया--'हजार बार मना किया, मेरी चीजा को छूने की जरूरत नहीं।' ले-ल्ने ठक-ठक। किसी दिन वी० सी० आर० पर फिल्मे देखते धर दबोचा। झापड। लाते। 'पहले एक बार मेरा ही नया सूट पहने, राजा बना बैठा था--तो बनाऊँ राजा?' चाकू की नाक' 'हाय।

'जब-तब फोन मिला रहा होता है हरामजादा। मिला दूँ नबर यमदूत से?'

सब-कुछ आ पहुँचता है इस वर्जित क्षेत्र मे--कापियाँ-किताबे। व कमीनियाँ ला देती हागी। उस दिन वह लाल चुन्नी वाली कैसे आँख फँसाए बैठी थी। नमक हमारा खाए, अडे किसी और को दे। सारी चतावनियाँ बेकार। मारनेवाला थक जाए। खानेवाला ताजादम।

अचानक एक नया पुलिस अफसरो का दल। पी चुकने के बाद--आपको हमार साथ चलना हागा। कुछ पूछताछ होगी। जो कुछ होना-हवाना है आपसे छिपा नहीं। हमारी ड्यूटी है। कागज तो भरने हैं हमे। तीन रोज तक हमार मेहमान।

वक्त पर आ पहुँची जिसे टाइम दे रखा था मालिक ने। कामिनी सुन्दरी मोहिनी। होठो पर लिपस्टिक। चेहरे पर लालो। गालो पर फूटता लावा। ढीला हरी छींट का ब्लाउज। ऊपर के दो बटन खुले हुए। सवत्र मादकता। हँसी--"क्या देखता है रे? घबराहट कैसी? आ जा तू फिट है। तेरा मालिक कभी टिच्च

ज्यादातर टिच्च-फिस्स। मुँह पान की पीक स भरा हुआ--च्चप-च्चप भूँ-भों। अपनी औरता को घर से निकालने, बाहर करने, की बात तो आम है। लेकिन अपनी ही आरत का फिर रखरा की तरह बुलाने की बात तो शायद किस्से-कहानिया मे भी न हा। डाली रुकवा दी थी अपने दरवाजे द्वारका पटेल ने। बाप स पहले यही 'यही लम्पट झपट लिया था मुझ रूपवती पर। फिर घर मे ही विधिवत् विवाह। फिर और दूसरी सुन्दरी मै बाहर। न माँ-बाप की न पहले ससुरालवाना की। तब सबकी। कभी-कभी इसकी भी। शायद पहचानकर भी अनजान बन अजनबी रस चूसता है। मैं चली आती हूँ कुछ साचकर। आज पूरी तयारी के साथ आइ हूँ।"

तभी दरवाजे पर ठक की आवाज होती है हल्की-हल्की। जैसे बाहर से ताली घुमाइ जा रही है।

"तू उधर मत देख। तू इधर दख। आज सब ता उस ही दिखाना है। जल मरे। तू ही असली राजा। शरमाता क्या हे?"

आर राजा वह सब-कुछ दख रहा है जा आँख मूँदकर देखा करता था।

आज सब उलट-पलट है। आज यह सब मालिक दख रहा हे। शायद एक अलग लुत्फ है। काम-पिपासु दृष्टि बरसा रहा है मुँह से लार टपकी जा रही है और न जाने कहाँ-कहाँ स।

कपडे सुधार रहे थे, तब मालिक मे मालिक पैदा हो गया। नवाबे-आलम पैदा हो गया। मालिक म बादशाहे-हिन्द आ बसा। कसाई। जल्लाद। यमदूत। सब-कुछ बन गया मालिक।

लगता है आज मालिक कुछ परेशानी के आलम मे लौटा है, और इसी परेशानी के तहत कुछ ज्यादा ही चढा रखी हे। हाशो-हवास खा चुका ह।

"हरामजादी! हरामखोर! 'बेटी के' " गालिया की बौछार और तावड-तोड हमले। एक जिस्म पर। दूसरे जिस्म पर। बारी-बारी से मुँह म बसी तमाम गदी गालियाँ उगलता जाता है। एकाएक बत उठाकर राजा की तरफ लपकता है। राजा बचाव करता हुआ तालाब के किनारे चढ जाता है। मालिक अपने जिस्म का सतुलन खोकर नुकील खभे से जा टकराता हे।

मुँह मे झाग। जबान घुर-घुर करती तालू से जा चिपकती है। सिर और कधे से लहू बहने लगा है।

निढाल बदन। चिकने फर्श पर जा गिरा है। बदम। बेहोश। राजा क हाथ मे पानी का गिलास है--"मालिक! 'मालिक!" मुँह पर छींटे डाल रहा है। फिर टेलीफान की आर बढता है।

''झटक दो अब यही पर गुलामी को, और मरने दो अपनी मौत! कहा ना, सब-कुछ सोच-समझकर आई थी, तुम्हारे साथ बदचलनी करने नही ।''

राजा आँख उठाता है। एक नजर मालिक पर डालता है फिर प्रौढ सुन्दरी पर।

''अब तू ही यही पर मालिक बनकर रह। तुम्हारे साथ खेतचद बाबू है। उनके साथ पुलिस हे। डॉक्टर है। इजेक्शन, दवाई, मृत्यु-प्रमाणपत्र सब-कुछ।''

''नही रहना। जान गया हूँ सब रास्ते। अपने लिए खुदता कब्र। उधर रहा चाबियो का गुच्छा। सँभालिए यहाँ का राजपाट। असली हकदार आप ही है।''

सहसा बाहर ट्रको की घुर्र-घुर्र सुनाई देती हे ओर फिर भाग-दाड।

ऊँची कद-काठी का आदमी एकाएक छलाँग लगाता हुआ इधर ही पहुँच जाता हे। पीछे-पीछे पुलिस। वह पुलिस पर गाली चला देता है। पुलिस-टोली बडी फुर्ती से बचाव करती हुई उसे धर दबाचती हे। 'ओह यह ता वही देत्य है।' राजा के सामने शक्ल कौंधती है—द्वारका पटेल।

पानी के छींटा का असर हुआ है या शोर की वजह से मालिक आँखे खालता है। मुश्किल से हाथ उठाकर पुलिसवाला को रोक रहा है। बालने से लाचार।

पुलिसवाले मिलकर उस आदमी (द्वारका पटेल) के हाथ-पाँव जेसे शिकजे मे जकडते चले जाते ह—''कब से चल रहा है यह खोटी चीजा का व्यापार?''

राजा एक अँधेरे काने मे जा खडा होता है। देखता है—बेटे के सामने बाप पर बरसते ताबडतोड डडा के प्रहार—हाय, मार डाला! मगर बेटा बेबस आँख मूँद लेता है या फिर से बेहोश हो गया है।

बीच के इस दृश्य पर पडती रोशनी के अतिरिक्त, चारा ओर अँधेरा छा चला हे। उस अँधेर मे अजब-सी गूँगी गूँज व्याप्त है।

उसी अँधेरे मे राजा धीरे-धीरे दूर-दूर खिसकता जाता है।

फिर से एक बार राजा भुडू बनकर सबकी नजरा से बचता-बचाता अँधेरी रात म विलीन हा जाता है। उसके कदमा म जैसे चिंगारियाँ हैं। कदम किंदरिया की तरफ बढ रहे हैं।

●

लुटे हुए दिन

हॉस्टल मे धीरे-धीरे सारी चहल-पहल खत्म हो गई थी। होते-होते समझिए सारा हॉस्टल ही बयाबानी का शिकार हो गया था। रह गए थे दो प्यारे-से नन्हे लडके—हबीब और शमीम। तब पता चला दोनो चचाजाद भाई थे। गोरे-गोरे नाजुकमिजाज। स्टाफ के कुछ लोग इन्हे अग्रेज बच्चे कहा करते थे। खैर, थे तो वे ऊँचे खानदान से ही।

इन दो के अलावा वहाँ जो और दो जने बचे थे उनमे एक पुराना मझोले कद का पक्के रगवाला बेयरा था। उसे सभी *भाटी-भाटी* कहकर पुकारते थे। पता नहीं वह अब तक वहाँ कैसे था। मुझे हर वक्त वहम या डर बना रहता कि वह कभी भी अचानक हॉस्टल छोडकर रफूचक्कर हो जाएगा। इसलिए मैं उसे हर तरह से खुश रखने की कोशिश करता—खुशामद से लेकर पैसा तक से। दूसरा वहाँ अब तक बने रहनेवाला मैं ही था यानी हॉस्टल का सीनियर वार्डन—प्रीतपाल।

लाहौर का किस्सा बयान कर रहा हूँ, और उन्हीं दिनो की मामूली-सी तफ्सील के साथ जब मुल्क आजाद होनेवाला था। और अगर इस लिहाज से देखा जाए तो

कोई भी तफसील मामूली न होकर गैरमामूली हो जाती है। कहने का तो कह गया कि मुल्क आजाद होनेवाला था, लेकिन यह कहना कहीं मौजूँ लगता है कि एक मुल्क के दो मुल्क बनने जा रहे थे, जिन्हें दो अलग-अलग मुल्कों की आजादी का जामा पहनाने में हमारे बड़े-बड़े लीडर दिन-रात मुशक्कत कर रहे थे। तब तक पूरी तरह तय नहीं था कि लाहौर किधर जाता है। कभी किसी कौम का पलड़ा भारी नजर आता तो कभी दूसरी का। देखा यह भी जाता कि मार-काट में कौन माहिर हो चला है। इस प्रकार धीरे-धीरे सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि से कुछ बातें जरूर उसी धीमी गति से साफ होती दिखाई देने लगी थीं। बिना स्पष्ट घोषणा के सभी अपनी-अपनी जगह कभी शेर और साथ ही कभी सहमे हुए थे।

अब होता यह था कि रात, सोने से पहले लोग अपने अल्लाताला या भगवान से उन्हें शातिरों से महफूज रखने की दुआ माँगकर सोते थे। फिर भी मजा यह कि सोते कम जागते ज्यादा थे।

पहले हमारे हॉस्टल में होता यह था कि सोने से पहले हम लोग, सुबह के नाश्ते के अपने-अपने मीनो, किचन-स्टाफ को लिखवा दिया करते थे। मैं तो ज्यादातर वैजिटेरियन डिशेज का ऑर्डर दिया करता और वे दोनों चचाजाद भाई, हबीब और शमीम नॉन-वैजिटेरियन खानों का। बताया करते कि उनके वालिदैन ने कहा है कि इससे आदमी मजबूत होता है। खैर इसी तरह अपने-अपने हिसाब से हर कोई खाता-पीता था।

क्या तो वे दिन थे जो सुबह से रात तक अपनी गरमाहट कायम रखते थे। यह गहमा-गहमी स्कूल-कैम्पस की जान हुआ करती थी। कितने चुस्त-दुरुस्त चपरासी, बेयरे माली चौकीदार। अपने-अपने सब्जैक्ट के माहिर अध्यापक अपने कामों को सरअंजाम दिया करते थे। कुल मिलाकर विद्यार्थियों से लेकर प्रिंसिपल, सभी उत्साही जीव।

ओह अब यह सारा सिलसिला सिकुड़कर एक छोटी-सी डाइनिंग-टेबल पर आकर महदूद हो गया और समूचे वातावरण की महक उड़कर न जाने कौन से मुल्क में चली गई।

चूँकि पढ़ानेवाला सारा स्टाफ और स्टूडेंट्स—इन दो बच्चों को छोड़कर—रह ही नहीं गए थे, सो पहले की तरह मेजों या जगहों का बटवारा भी खत्म हो गया था (यहाँ मेरी बात बटवारे को लेकर किसी को अप्रासंगिक लग सकती है, लेकिन क्या करूँ। मुझे माफ करें, मेरा ध्यान तो उस बटवारे की तरफ आप-से-आप खिंच जाता था जो बटवारा—मुल्क के साथ हम सबका होने जा रहा था)। सो हम तीनों एक ही छोटी मेज पर नाश्ता लेने लगे थे और फिर बेयरा को भी

अपने साथ बिठा लिया करते। खाने के वक्त भी उससे ताकीद करते कि वह पहले पूरा खाना तैयार कर ले ताकि चारों ही एक-साथ बैठकर खा-पी लें। काम ही क्या रह गया था सिवाय खाने-पीने के वक्तों की प्रतीक्षा के, या ज्यादा से ज्यादा बेदिली से कैरम या पिंगपांग खेल लेना।

कई बार सोते वक्त, खाने या नाश्ते के दौरान गोलियाँ चलने की आवाज और कभी-कभी दूर आग की लपटों का ऊँचा उठना हमारे इस दूर-दराज बसे हॉस्टल से दिखाई दे जाता। तब हम चारों खामोश रहकर एक-दूसरे की तसल्ली का बाइस बने रहते जैसे इसी तरीके से सारी मुसीबत टल जाएगी।

पहले भी शमीम और हबीब मुझे बहुत प्यारे लगते थे और उसी की प्रतिक्रिया-स्वरूप ही शायद मैं भी उन्हें अच्छा लगने लगा हूँगा। बड़ी जिज्ञासा से मेरी और मेरे नाश्ते की ओर देखा करते और थोड़े संकोच के साथ मेरी रकाबी में से कुछ हासिल कर लिया करते। उनका मन रखने के लिए, मैं भी इसी प्रकार उनसे कुछ ले लिया करता।

एक दिन महबूब अली पुराना बैयरा, अचानक वहाँ पर आ पहुँचा (वही शुरू से शमीम-हबीब की देखभाल करता हुआ देखा जाता था)। उसे वापस आया हुआ पाकर हम सब बहुत खुश हुए, जैसे महबूब अली का आना पुराने दिनों के आने का शुभ-संकेत हो। हम सब सिर्फ इसी बात के तो मुंतजर थे। मगर यह सब ऊपर की स्थिति थी। हरदम अंदर ही अंदर विचलित कर देनेवाले हालात करवट लेते रहते थे। हम हताश थे और निराश हो चले थे कि अब पहले-सा पुरशोर रौनक-भरा माहौल ताउम्र देखने को नहीं मिलेगा। इसके बावजूद—आदमी की फितरत ही, उम्मीदों के सहारे सारी उम्र काटना होती है। इसीलिए शायद एक निकम्मी और नामाकूल आस सिर्फ एक महबूब अली के जरिए देखने लगे कि जैसे महबूब अली लौटा है, वैसे एक न एक दिन तमाम अध्यापक चौकीदार खानसामे विद्यार्थी लौट आएँगे। उनकी देखा-देखी या सुन-जानकर प्रिंसिपल करतारसिंह भी जो बैठे-बिठाए, लंबी छुट्टी की अर्जी मेज पर डालकर चले गए थे शायद इसी हफ्ते वापस आ जाएँगे। प्रो० रियाज अहमद इंग्लैंड से तो लौट चुके हैं फिर भी इंस्टीट्यूशन क्यों नहीं आ रहे? हो सकता है, दो-चार रोज रुककर थकावट मिटा रहे हों। वक्त आने पर सभी जरूर आएँगे पुरानी रौनक को साथ लेकर। यह सब सोचते हुए मैं शायद वक्त से खिलवाड़ कर रहा था या वक्त ही मुझे बेवकूफ बना रहा था। कौन-सा वक्त? कैसा वक्त? किस वक्त का इंतजार? मुझे किसी न आनेवाले का इंतजार था।

और तीसरे ही दिन सुबह उठकर पाता हूँ, भाटी चुपके-से गायब हो गया

है। मुझे पता है वह खुद तो इस हॉस्टल से रिहाई चाहता ही था और मुझसे भी वह कइ राज पहल से इसरार कर रहा था कि यह जगह छाड दूँ। पर मेरा कहना था कि इन दो मासूमा को किसके सहारे छोडूँ? रजिस्ट्रा को टटोलकर मने उनके वालिदन को फ्रास तार तो दे ही रखा था।

महबूब अली ने बताया कि कोई न कोई आकर इन बच्चा को जल्दी ले जाएगा। आप जाना चाहे तो हिन्दुस्तान चले जाएँ। अब तो पक्का फैसला हो चुका है कि लाहोर पाकिस्तान मे रहेगा। मगर में न माना और कहा कि मैं थोडा ओर इतजार कर सकता हूँ।

आखिरकार एक दिन एक ओरत, जो हबीब और शमीम मे से किसी एक की माँ आर किसी दूसरे की चाची थी, आ पहुँची। दोना वच्चा को मन मसासकर उसके सुपुर्द कर दिया। सब-कुछ भूल जाने का उपक्रम करता हुआ एक कडवा घूँट पीकर अमृतसर आ गया।

बच्चे ता सभी मासूम होते हैं। थाडे रद्दाबदल क साथ उनके क्रिया-कलाप, स्वभाव हरकते एक-जेसी लगतो है (इसके बावजूद इक्के-दुक्के बच्चे हम बेहद अजीज हाते है। हम उन पर हरदम अपनी जान निछावर करने को तेयार रहते हैं। हबीब और शमीम को ही ले और मेरे अदर की सचाई की बात कर तो मैं शमीम पर कुछ ज्यादा ही फिदा था)। अपनी आदत के मुताबिक में मस मे बच्चा के बीच ही खाता-पीता हूँ (इससे खाने के स्तर का भी पता चलता रहता है)। यहाँ भी सुशील, असीम जेसे बच्चा की आवाज के साथ हबीब-शमीम दिखलाई देने लगते हैं—'सर आप यह आमलेट लेगे? यह लीजिए ना सर! जरा अपनी प्लेट तो इधर कीजिए।'

इन आवाजो और शक्लो से बचने की खातिर मैं कई बार अलग से खाना लेने लगा हूँ। एकबारगी सब-कुछ भूल जाना चाहता हूँ। भरसक काशिश म लगा रहा कि भीतरी जख्मा का हवा न लगे। विभाजन के जख्म तो ऐसे थे जिसके भी हुए थे हर वक्त ही रिसते रहते थे और आज तक सालोसाल बीत जाने पर भी इस पीडा से आहत लाग अपनी-अपनी या दखी-सुनी रामकहानी ले बैठते है। मगर मेरी कहानी थोडी अलग किस्म की थी जिसे भूलने मे कुछ-कुछ कामयाब भी हा चला था कि दो साल पहले मुझे एक ऐसा शख्स मिला जा दगो के दोरान लायलपुर से निकलकर आया था। उसने मुझे एक नीम-पागल का किस्सा सुनाया। सच मानिए, अगर यह किस्सा मेरे सामने न आया हाता ता मैं अपनी दु खातिका का आखिरी वक्त तक सीने म ही लिये खत्म हो जाता। अब उस घटना का मैं

''देखा है ना मुसलमान?''

''जाओ बच्चो! भगवान तुम्हे हमेशा राजी-ख़ुशी रखे!''

''देखा हिन्दू है। है ना?''

''मर जाओ! तबाह हो जाओ! जा भी हूँ, पर शक तो न करो! मेरा क्या है।''

उस शख़्स ने आगे बताया।

सब चले गए। मगदूडिया सुबक-सुबककर रो रहा था।

मैं अपने दो दोस्तो के साथ वहाँ मौजूद था। भीड को नहीं समझाया जा सकता। हम तीनो ने मगदूडिया को उठाया। उसे चाय-नाश्ता कराया। उसे फिर से हँसाने की कोशिश करने लगे।

इस छोटी-सी घटना को सुनने के बाद मेरे समूचे शरीर मे बवडर पैदा हो गया। अपना आपा खो बैठा। मेरे अन्दर जैसे मगदूडिया ने प्रवेश पा लिया। थोडा सतर्क होकर सोचता तो यही खयाल आता कि हिन्दू या मुसलमान की बनिस्बत आदमी पहले बाप होता है। फिर से मुझ पर पागलपन का दौरा पडने लगता। मुझे अपनी पोशाक निहायत ढुलमुल और मैली लगती। बाल गुत्थमगुत्था जिन्हे मैं अनजाने अपने हाथो से नोचता रहता। इसी तरह अपने होठ मोटे-मोटे और झूलते-झूलते जान पडते।

मुझे ऐसा भी लगने लगा कि अगर यही सूरते-हाल रही तो सचमुच एक दिन मै पागल हो जाऊँगा।

करीब दस दिन बाद मैंने उसी, लायलपुर से विस्थापित शरीफजादे को बुलाया। शुरू से आखिरी दिनो तक की दास्तान कह डाली जिसके मुतअल्लिक पहले मै यह मानकर चल रहा था कि ऐसे तकलीफदेह वाकियात को पूरी तरह भुला देना ही जीवन जीने की जरूरी शर्त है।

मैंने उस शरीफजादे को यह भी बताया कि दो-तीन बार तो दगई हमारे उस सुनसान इलाके मे भी आ पहुँचे थे। हम कैसे बच पाए, हमीं जानते हैं। क्या मेरे लिए यह बेहतर न रहता कि औरो की तरह मैंने भी शुरू मे ही लाहौर छोड दिया होता? जब वक्त हर तरफ से सुलग रहा था तो ऐसी खौफजदा फिज़ाँ मे मैं उस भुतहे हॉस्टल मे पाँव फँसाए मौजूद था तो इसकी असल वजह दीगर रही होगी, जिसे पूरी तरह दूसरे तो क्या मै खुद ही आसानी से नहीं समझ पा रहा था। उन बच्चो के साथ अब ज्यादा हेल-मेल होने से मेरे सामने किसी धुध मे से उभरकर कोई चीज सामने आना चाहती थी, पर सब-कुछ गोलमाल और अस्पष्ट। कौन-

'दखा, है ना मुसलमान?''

''जाओ बच्चो। भगवान तुम्हे हमेशा राजी-खुशी रखे।''

''देखा हिन्दू है। है ना?''

''मर जाओ। तवाह हो जाओ। जो भी हूँ, पर शक तो न करो। मेरा क्या है।''

उस शख्स ने आगे बताया।

सब चले गए। मगदूडिया सुबक-सुबककर रो रहा था।

मैं अपने दो दोस्तो के साथ वहाँ मौजूद था। भीड को नही समझाया जा सकता। हम तीनो ने मगदूडिया को उठाया। उसे चाय-नाश्ता कराया। उसे फिर से हँसाने की कोशिश करने लगे।

इस छोटी-सी घटना को सुनने के बाद मेरे समूचे शरीर मे बवडर पैदा हो गया। अपना आपा खो बैठा। मेरे अन्दर जैसे मगदूडिया ने प्रवेश पा लिया। थोडा सतर्क होकर सोचता तो यही खयाल आता कि हिन्दू या मुसलमान की बनिस्बत आदमी पहले बाप होता है। फिर से मुझ पर पागलपन का दौरा पडने लगता। मुझे अपनी पोशाक निहायत ढुलमुल और मैली लगती। बाल गुत्थमगुत्था, जिन्हे मै अनजाने अपने हाथो से नोचता रहता। इसी तरह अपने होठ मोटे-मोटे और झूलते-झूलते जान पडते।

मुझे ऐसा भी लगने लगा कि अगर यही सूरते-हाल रही तो सचमुच एक दिन मैं पागल हो जाऊँगा।

करीब दस दिन बाद मैंने उसी, लायलपुर से विस्थापित, शरीफजादे को बुलाया। शुरू से आखिरी दिनो तक की दास्तान कह डाली जिसके मुतअल्लिक पहले मैं यह मानकर चल रहा था कि ऐसे तकलीफदेह वाकियात को पूरी तरह भुला देना ही जीवन जीने की जरूरी शर्त है।

मैंने उस शरीफजादे को यह भी बताया कि दो-तीन बार तो दगई हमारे उस सुनसान इलाके मे भी आ पहुँचे थे। हम कैसे बच पाए, हमी जानते है। क्या मेरे लिए यह बेहतर न रहता कि औरो की तरह मैंने भी शुरू मे ही लाहौर छोड दिया होता? जब वक्त हर तरफ से सुलग रहा था तो ऐसी खौफजदा फिजाँ मे मैं उस भुतहे हास्टल मे पाँव फँसाए मौजूद था तो इसकी असल वजह दीगर रही होगी, जिसे पूरी तरह दूसरे तो क्या मै खुद ही आसानी से नहीं समझ पा रहा था। उन बच्चो के साथ अब ज्यादा हेल-मेल होने से मेरे सामने किसी धुध मे से उभरकर कोई चीज सामने आना चाहती थी, पर सब-कुछ गोलमाल और अस्पष्ट। कौन-

सा अमीर और कौन-सा बच्चा। सोचता—अगर यह सब सच न निकला, तो भी क्या ? आखिर इन्सानी फर्ज भी तो कोई चीज होती है। फिर मेरा क्या था! अकेली जान!

हाँ अकेली जान।

सात-एक साल पहले मेरी तंगहाली से और मेरी टोका-टाकी के बीच सरला ने मुझे छोड दिया था। तब वह पेट से थी। मैं दो-तीन जगह पार्टटाइम काम करके बमुश्किल गुजारे लायक कमा पा रहा था। इतने कम पैसों को लेकर हम दोनो म चिक-चिक चलने लगी थी। मैं उसे बताता कि वक्त आने पर मुझे बडी नौकरी मिलेगी जरूर। उसका जवाब होता—नवाबी तो नहीं ? सरला अपूर्व सुन्दरी थी और महारानियो की तरह रहना चाहती थी। बाप उसका किसी जमाने का मशहूर उद्योगपति था मगर घाटा खाकर निचले स्तर पर आ पहुँचा था, इसलिए मजबूरी म मुझ पढे-लिखे होनहार पर लगभग बेरोजगार युवक से अपनी लडकी की शादी कर दी थी। लडकी कुछ समय तक तो आदर्शवाद *सिम्पल लिविंग हाई थिंकिंग* की बात करती हुई अपनी शारीरिक भूख मिटाती रही मगर वक्त थोडा आगे सरका तो उसकी पुरानी महत्त्वाकाक्षाएँ उभरकर सामने आने लगीं। बचपन मे लाड-प्यार से पली-खेली लडकी मुझे निकम्मा, जमाने के साथ न दौड पानेवाला आलसी कह-कहकर ताने देने लगी। फिर मेरे मना करने के बावजूद सऊदी अरब के एक अमीर के व्यापार मे खुद को *पार्टनर* कहकर दूसरे मुल्को के दौरो पर जाने लगी। फिर मेरे पास लौटकर नहीं आई।

एक शाम की बात है। मैं ऐसे ही बेदिली से टेबल-लैम्प जलाए मेज पर झुका कोई पुरानी फालतू फाइल देख रहा था कि तभी अचानक एक औरत की आवाज सुनाई पडी। वह दरवाजे की ओट लिये बोल रही थी—"आप तो बडे ओहदेदार और दानिशमद ह। सुना है आप तो बच्चो के साथ खाना भी तब्दील कर लेते है। इतनी मुहब्बत कहाँ से जाग गई ?"

"एस ही ।" मैं अटककर रह गया।

"आपका असली प्लान क्या है सब समझती हूँ। महबूब ने मुझे तार दिया तो सारे के सारे काम बीच मे छोडकर भागी आई।"

"तार तो मैंने भी दिया था फ्रास "

"बनिए मत! हम तो कब से फ्रास छोडकर कराची आ गए थे पर बेहद मसरूफ थ। लेकिन आप बताएँ, अब तक किस फिराक म यहाँ पर टिके हैं ?"

"सिर्फ बच्चो की खातिर।"

"बच्चो को पुलिस या कलैक्टर के हवाले कर सकते थे। हमने उनसे बात

कर ली थी। अब यह हमारा मुल्क है।''

''मैं ऐसा नहीं कर सकता था।''

''असली मंशा मैं समझती हूँ। कौन अपनी जान को जोखिम मे डालता है।''

दिल किया नोच खाऊँ उस अहसान-फरामोश औरत को जो नवाबी लिबास में धीरे-धीरे मेरे सामने आकर खडी हो गई थी। कमरे मे अँधेरा था। मैने झट बटन दबाकर बडा बल्ब जला दिया।

एक बिजली-सी कौंध गई। उसने भी मुझे पहचान लिया पर अनपहचाना कर दिया—''अब जाइए अपने मुल्क।'' वह चीख पडी।

वह आगे बरामदे की तरफ बढ गई। बच्चों को सख्ती से पकडकर साथ ले जाने लगी।

''रहम कीजिए और बताइए कि आप किस बच्चे की माँ हैं और किसकी चाची?'' मै गिडगिडा रहा था।

उसने कोई जवाब न दिया बल्कि हिकारत-भरी निगाह मुझ पर डालकर फेर ली।

बच्चे लगातार मुझसे चिपटे ऊँची आवाज मे रोए जा रहे थे—''सर हमारे साथ रहेंगे।''

वह बडबडाती हुई उन्हें और मुझे कोस रही थी और बेदर्दी से बच्चों को खींच-खींचकर मुझसे अलग कर रही थी। फिर भद्दी गालियों तक उतर आई थी।

मैंने रुआँसी आवाज में एक दफा फिर कोशिश की—''कौन-सा मेरा है? मेरे जिगर का टुकडा? बता दीजिए प्लीज। वैसे मुझे दोनों ही प्यार लगते हैं। फिर भी प्लीज।''

''शट अप यू बास्टर्ड। गो टु हेल।'' वापस दनदनाती हुई आवाज गिरती हुई बिजली की कौंध की तरह।

सामान तो वह पहले ही महबूब से बँधवा चुकी थी। दोनों मिलकर बच्चों को घसीट ले गए।

मैं सारी रात बिलखता रहा।

सुबह डाइनिंग टेबल पर अकेला था। खाली प्लेट और वही आवाजें—यह लीजिए न सर। सर, अपनी रकाबी जरा इधर सरकाइए तो।

मैं चाहता था कि मैं पाकिस्तान में ही बस जाऊँ ताकि मौके-बेमौके हबीब और शमीम को देखभर लिया करूँ। क्या पता कभी हवस पूरी होने पर या कोई

ठोकर लगने पर उस औरत का दिल पिघल जाए।

लेकिन अब अफरा-तफरी का आलम, और आग उगल रहा था। मेरे लिए वहाँ पर और टिके रहना गैरमुमकिन हो उठा था। किसी तरह खुद को बचाता हुआ यहाँ अमृतसर आ पहुँचा था। यहीं से मुझे बहुत पहले से बुलावे आ रहे थे।

जिस दास्ताँ को लम्बी मुद्दत तक दामन तक आने की इजाजत नहीं देता था, वही सारी दास्ताँ सत्र आप-से-आप वेग-गति से उस नेकदिल इन्सान के सामने बह निकली।

गर्दन उठाकर देखा तो वह मेरी पीठ सहला रहा था और दूसरा हाथ मेरे चश्मे के नीचे रखे हुए था। मुझे हौसला देते-देते उसका स्वर द्रवित था— ''सोचिए, अब यह वाली तकसीम आपके लिए क्या मायने रखती है? यहाँ पर बहुत सारे प्रीतपाल हैं और बहुत सारी सरलाएँ मिलेंगे।''



अंदर शोर कैसा है

देखा जाए तो पाँच बरस कुछ भी नहीं होते लेकिन सैन्य जीवन के लिहाज से गौर करे तो पाँच बरस बहुत-कुछ होते हैं।

निरतर आगे बढने की चाह थोडा रिस्क, थोडा एडवेचर और जिंदगी को बराबर बारीकी से जानने-समझने की मेरी उत्कट इच्छाशक्ति ही शायद मुझे इस ओर खींच लाई थी। मेरी नियुक्ति ब्रिगेडियर के पी०ए० के रूप मे हो गई।

हर अफसर का मनोविज्ञान समझने की मेरी अद्भुत क्षमता के कारण मैं हमेशा उनका विश्वासपात्र बना रहा इसी कारण अपने साथिया के लिए ईर्ष्या का कारण भी। सभी यही कहते कि इसके पास जादू-टोना है जो सभी अफसर इसी का अपने साथ रखना चाहते हैं। अदर से जले-भुने लोग ऐसी-ऐसी बाते भी कह डालते जो खुलेआम शालीनता का उल्लघन होतीं—हाँ भाई शरीर ही ऐसा नाजुक है अफसर को साथ बैठाने को लडकी नहीं मिली, इसे ही ले लिया।

—वाह प्रियरजन। सख्त से सख्त अफसर भी तेरे आगे-पीछे रहते हैं। भई हमें भी सिखाओ यह मोहिनी-मत्र।

—अरे छोडो यार, यह ठहरा अव्वल

दर्जे का चापलूस। इतने नीचे हम हरगिज नहीं गिर सकते।

वक्त की तब्दीली के साथ उतराव-चढाव और तरह-तरह के दौर चलते ही रहते हैं। फिर अचानक एक दिन 'ब्रिगेडियर एस० एन० सुखानी यहाँ आ रहा है' इस खबर के साथ पूरी रेजीमेंट का माहौल सहम-सा गया। ब्रिगेडियर एस०एन० सुखानी हिटलर का पर्याय था। सहमने के बावजूद, मुझे लेकर, कुछ साथी खासे खुश थे--लो बच्चू, खूब ऐश कर ली। अब होगी असली परेड। इस पटाकर दिखाना तो तेरा सिक्का मान लेंगे। अब मजा आएगा। साहब का अपना आदमी।

मैंने भी सुन रखा था किसी यमदूत का अवतार है एस० एन०। मशहूर यह भी था कि भूत की तरह है। न एक मिनट खुद चैन से बैठता है न दूसरे को बैठने देता है। औरों को परेशान देखकर उसे लुत्फ आता है। सैडिस्ट।

मैंने अपने-आप से कहा--तो क्या हुआ बेटा। तू तो नित-नए अनुभव चाहता था। एडवेंचर का तलबगार है। पहले खूब ऐश कर देखी। अब किसी कसाई की खिंचाई ही सही। घबराता क्यों है? ये बड़े अफसर जल्दी-जल्दी ट्रांसफर होते रहते हैं। तेरा भी तो इस बीच ट्रांसफर या प्रमोशन हो सकता है। चिन्ता की क्या बात है?

परेड-ग्राउंड में बैंडबाजों की धुन। सेल्यूटों की अनुगूँज। सलामी गारद का निरीक्षण। अटेंशन। राइफलों पर हथेलियों की थप-थप। मैदान में बूटों की ठक-ठक।

मगर अंदर से सबकी बोलती बंद। एक दहशत। तूफान आने से पूर्व की खामोशी। कँपकँपी। सर्दी में भी वर्दियों में चिपचिपाहट।

फिर पूर्व-ब्रिगेडियर दादू स्वामीनाथन की भी विदाई हुई। तोपों की रस्मी सलामी। कई-कई पार्टियों का आयोजन।

पूरी ब्रिगेड के सभी कर्मचारियों का वास्ता तो एस०एन० सुखानी से समय-समय पर पड़ना ही था परन्तु मेरा साथ तो चौबीस घंटों का था।

मैं ऊपर से पूरी तरह होशियार सतर्क मजबूत, लेकिन अंदर से थोड़ा-थोड़ा हिला हुआ भी जरूर था। पर किसी को शिकायत का मौका ही क्या दिया जाए? चौड़ा माथा फूले हुए लाल-लाल होंठ। गालों पर माता के कुछ दाग। खूँखार होगा अपने काम में ढिलाई बरतनेवालों के लिए। समय पर आओ समय पर जाओ। जरूरत पड़ने पर फौरन रिपोर्ट करो। शॉर्टहैंड की स्पीड बढ़िया है। टाइप सिर्फ अच्छी ही नहीं मोतियों-सी चमकती है। फिर डर किस बात का? खा तो नहीं जाएगा। तो भी मेरे सामने ही नहीं दुनिया के [illegible] सिविल और

आर्मी का अतर शीशे की तरह स्पष्ट है। एक बार तो यहाँ सारे कायदे-कानून धरे रह जाते हैं। तब क्या नौकरी छोड भाग जाऊँ? यहाँ यह भी इतना आसान काम नहीं है। अगर हमारी रेजीमेंट म बवडर ही आन पहुँचा है तो मुझे इसका मुकाबला बहादुरी से करना होगा।

साफ है कि इतनी सारी सोच, अपने से तर्क-वितर्क ही किसी का दिमाग खराब करने के लिए काफी होते हैं। और किसी पर पडा हो न पडा हो, मुझ पर एस०एन० का दौरा पडा हुआ था। कस-कसकर मोजे पहनता। बूटो पर पॉलिश खुद करता। वर्दी-प्रेस का निरीक्षण करता। बेल्ट-बकल्ज को ब्रासो से चमकाता। साहब के चैम्बर मे जाने से पहले छह बार अपने बैजो-बटनो को परखता। 'मे आई कम इन सर' के साथ जरा-सा रुकता-झुकता।

'आइ प्लीज कम' उत्तर मिलते ही पाँव अदर रखता। सैल्यूट लगाता। वे मुसकराते। बैठने के लिए कहते। डिक्टेशन लेता। हर कायदे-कानून का पालन करता हुआ, अपने कमरे म आ काम म लग जाता। जब तक काम खत्म न हो, वहाँ से हिलता नहीं। इजाजत लेकर ही घर जाता।

ब्रिगेडियर साहब कभी-कभी घर पर भी फोन कर देते। कुछ हिदायत देते। काम की प्रगति पूछते। अगले रोज के कार्यक्रम समझाते और फिर कुछ समय बीतने पर यूँ ही फोन कर देते। मेरा तथा बच्चो का हाल-चाल पूछ लेते।

मैं धीरे-धीरे तनावमुक्त होने लगा। फिर भी सतर्क हरदम तो रहता ही। कहीं काम मे ढील न हो। अनुशासन भग न हो। कभी वे बिगड गए तो किए-कराए पर पानी फिर जाएगा। मैं टु द प्वाइंट बोलता। 'यस सर, यस सर। एज यू प्लीज' जैसी शब्दावली का प्रयोग करता। वे मुसकराते रहते।

आदमी कोई काम करेगा तो गलतियाँ होती ही हैं। मैं जब भी कभी अपनी किसी चूक से अवगत होता तो थर्रा जाता कि शुक्र है ब्रिगेडियर साहब की नजर इस पर नहीं पडी। उनकी *गिरिफ्त* से मेरी तमाम भूले छूटी जा रही हैं। मगर एक रोज मैंने पाया कि कुछ टाइप की अशुद्धियाँ तथा कुछ तथ्यात्मक आँकडो को उन्होने अपनी कलम से ठीक किया हुआ है। जरूर ऐसा पहले भी कई बार हुआ होगा। परन्तु उस कच्चा चबा जानेवाले दैत्य ने मुझे एक लफ्ज भी न कहा।

धीरे-धीरे मैं बहुत सहज होकर पहले की तरह जीने लगा। सबने कहा 'लो इसे भी कब्जे मे कर लिया।' तब मैंने उनसे पूछा—"बताइए, उन्होने और किस-किस को तग या परेशान किया है?"

एकबारगी सभी सोच मे पड गए।

सूबेदार भडारी बोले—"बात तो ठीक कहता है। कोई शान नहीं, किसी किस्म का घमड नही। हमारी तमाम पार्टियो म आते हैं। सबसे हाथ मिलाते हैं। हँसते-मुसकराते है। एक बार तो सबसे गीत या गजल सुनने के बाद प्यानो की धुन पर खुद एक गमगीन नगमा गाकर सुनाया था—

पता कहाँ था हमे, क्या होनेवाला है।
हसीं ख्वाबो का बाग उजडनेवाला है।
कहाँ तो सोचा था यूँ ही बढे जाएँगे।
नहीं खबर थी, कारवाँ ढहनेवाला है॥"

जैसाकि अकसर होता है, बडे लोगो के बारे मे सुनी-सुनाई बातो या अफवाहो का सैलाब अधीनस्थ कर्मचारियो को घेरे रहता है। जब-तब जहाँ-तहाँ ऐसी चर्चाएँ, परिचर्चाएँ सुनाई देतीं—'सुना है कि भाई, हमने तो यह भी सुन रखा है कि घरेलू परेशानियो मे मुब्तला हैं। मेम साहब बीमार रहती हैं, इसीलिए किसी फक्शन-पार्टी मे साथ नहीं लाते। ऊँह किसी की नजर न लग जाए! सुना है बहुत सुदर हैं। ज्यादा शटर-शटर मत किया करो। किसी ने अगर चुगली खा ली और उनका गुस्सा लौट आया तो बच्चू, किसी की भी खैर नहीं।' फिर बहस-मुबाहिसा ठडा पडने लगता।

धीरे-धीरे मेरे साथ उनके सबध एकदम दोस्ताना हो चले थे। हाथ मिलाना व्यग्य कसना बदले मे मेरे व्यग्य के जवाब मे उनका 'हा-हा' कर हँसना मुझे बहुत भाता।

फिर एक दिन सुबह सात बजे बुलाया था। मैं कुछ लेट हो गया तो बोले—"क्या रात को लगता है कुछ ज्यादा ही जश्न मनाते रहे।"

इस पर मेरे मुँह से निकला—"सर आप तो मेम साहब को रात तक की पार्टियो म नहीं लाते। कहीं हवा न लग जाए।"

सहसा वे मौन हो गए।

मैंने प्रार्थना के स्वर म कहा—"कभी हमारे यहाँ लेकर आइए ना!"

अब की उनका चेहरा उतर गया। थोडे वक्फे से बोले—' तुम नहीं समझोगे मिस्टर!" और फिर चुप्पी।

मैंने ज्यादा कुरेदना उचित नहीं समझा। उन्होंने कॉफी मँगवाई। हम दोनो बिल्कुल चुपचाप कॉफी सिप करते रहे। अकसर शाम को जब खाली होते मुझे फोन करते। कभी पहले से ही शाम का मिलना तय होता।

एक दिन की बात है। उस शाम भी हम दोनो की कुर्सियाँ मैस-लॉन म लगी

थीं। थोडी-थाडी देर मे बेयरा तली हुई मछली और भुनी हुई कलेजी ला रहा था। साथ ही चल रहे थे पैग दर पैग। आज उन्हाने कुछ ज्यादा ही पी ली थी।

"सर, अब चला जाए।"

"क्या सर-सर लगाए रहते हो। तुम हमारे पक्क यार हा। नौजवान, इमानदार हाशियार, सबका भला चाहनेवाले नेकदिल इन्सान, अपनी कपनी देकर हम आब्लाइज करते हा।"

"यह ता आपका बडप्पन है। पर एक बात " मैं रुक गया।

"डरते हा पूछते हुए? अब भी हमसे सभी डरते हैं, क्या? पूछो-पूछो, जा जी म आए।"

"क्या आप ही ब्रिगेडियर एस०एन० सुखानी हैं जो दक्षिण भारत की कई छावनिया मे रहकर श्रीलका चले गए थे। आपके नाम से पूरी रैजीमेट के लोगा के दिल दहल जाते थे। अब यहाँवाले कहते हैं जरूर व काइ दूसरे एस०एन० सुखानी हागे।"

"मै ही वही कमीना सुखानी हूँ।" और साथ ही अपने आपको एक ओर भद्दी गाली।

"ऐसा कैसे बोल रहे हैं साहब?"

"बिल्कुल ठीक बाला हमने। आआ मर साथ तुम्हे अपनी हरामजदगी दिखाऊँ।" ठीक इसी वक्त उन्हाने मेरा हाथ पकडा। लगभग घिसटता-सहमता हुआ मैं उनक साथ सीध उनक बेडरूम तक जा पहुँचा। सिरहाने पर मुँह औंधा किए औरत की सिसकी की-सी आवाज सुनाई दे रही थी।

"लो देख ला अपनी माँ को।"

मैं औपचारिकतावश उनके निकट पहुँच गया तो वे उठकर मुझे चूमने लगी—"आ गया रे मेरा सुधाकर। बैठ जा मेरी गोदी मे।"

"बहुत हा लिया लाड। अब बस करा।" फिर स मरा हाथ पकडे वे बाहर आ गए।

पीछे से बहुत दर्दनाक सिसकियाँ सुनाई पडीं—"मेरे पास क्या नहीं रहता सुधाकर? कहाँ चला जाता है?"

वे मुझे रात एक बजे तक सुनसान घाटियो और पहाडिया पर घुमाते रहे। रुक-रुककर थोडी उखडी हुइ साँस के साथ अपने अतीत की तरफ लोटते रह—"सुन रहे हो ना यगमैन। आज तुमसे कुछ नहा छिपाऊँगा। आह कितना बडा बाझा ह मन पर। आज उतार दूँगा। ठीक कहती है पावती। मैं हा उसकी दुगति का कारण हूँ।"

न चाहते हुए भी मेरे मुँह से निकला—"तब तो वे भी आपकी क्रूरता की शिकार रही होगी?"

"नहीं। उसे, सिर्फ उसे ही मैं पागलपने की हद तक चाहता था। उसे कहीं भी साथ न ले जाता। कोई उसकी सुदरता को नजर-भर देख न ले। मेजर जनरल लेफ्टिनट जनरल कोई भी आएँ-जाएँ, उसकी बीमारी का कहकर माफी माँग लेता और ट्रेजेडी देखा, आज उसकी विक्षिप्तता के कारण उसे घर मे वद रखता हूँ।" फिर से वे पावती के गुणो, सुन्दरता और अपने अनुराग-आसक्ति का वखान करते-करते रोमाटिक-से होने लगे—"हाय इतनी सुन्दर हूर परी, मगर जो चेहरे पर झुर्रियाँ देखते हो वह उम्र की वजह से नही झझावात के कारण से आई है।"

तभी दूर से शाति भग करती हुई गिरजाघर की बारह घटियाँ सुनाई दी। मैंने भी अपनी कलाई-घडी की तरफ निगाह डाली।

"होसला रखो। बस अव मेन स्टोरी पर आता हूँ—हाँ, मेन स्टोरी, और आज ही खत्म कर डालता हूँ। कल का क्या भरासा कह पाऊँ या न कह पाऊँ।

श्रीलका की ही घटना है। तब हमारी बटालियन ने वहाँ पडाव डाल रखा था। बहुत बाद म हिन्दुस्तानी फौज को वापस बुलाया गया था। तब भी मुझे वही कई इन्क्वायरीज वगैरह की वजह से रुकना पडा। मेरे खिलाफ होना-हवाना तो क्या था, इस बात को मैं भी समझता था और सारा स्याफ भी। औपचारिकताएँ पूरी करनी थीं। कर लीं और अब यहाँ हूँ। खैर, वहाँ पर भी मेरा पहले-जैसा ही आतक था। एक दिन जब दफ्तर से लौटा तो बहुत सकोच के साथ पार्वती ने कहा—'इस सतरी को गेट से हटा दीजिए।' वजह पूछी तो उसने टालने की कोशिश की। मैं गरम हो उठा तो वह डर गई। बडी मुश्किल से उसने बताया—'जब मैं कभी लॉन मे होती हूँ या बरामदे मे आती हूँ ता दूर गेट पर खडा-खडा वह हाथ के इशारो से अश्लील हरकते करता है। पहले भी एक-दो बार और आज भी।'

उसकी बात बीच मे छोडकर मैं उसी दम दनदनाता हुआ फाटक पर जा पहुँचा। झापडो और बूटा से उसका कचूमर निकालने लगा। वह कहता रह गया—'आपके पाँव की धूल ही तो हूँ। पर कसूर ता पता चले।'

मैंने गालिया की बौछार के बीच उसके हाथा को भी झटका कि इनसे क्या इशारेवाजी किया करता है?

वडी मुश्किल से वह कुछ समझने की स्थिति मे पहुँचा—'ऐसे कैसे कर सकता हूँ साहव। वह मेरी माँ हैं वहन हैं हम सबकी इज्जत हैं। यह ता सिर्फ

सत्यानाश हो जर्दे-चूने का। हथेली पर कभी फाँक तैयार कर लेता हूँ।'

मेरा गुस्सा ऐसा था ही नहीं जो ठडा पड जाए। सब-कुछ सुन चुकने के बावजूद, मैंने उसका कोर्ट मार्शल करा दिया।

इतना कह चुकने के बाद एस०एन० कुछ देर के लिए चुप हो गए, आसमान के तारो का देखने लगे जैसे उस सतरी को ढूँढ रहे हो। फिर वे आगे बोले—"उस सतरी का नाम नेतराम था। उसका इकलौता बेटा कई रोज से बीमार चल रहा था। बाप के बारे मे सुनकर उसकी दशा और शाचनीय हो गई। *बापू-बापू* चिल्लाते-चिल्लाते एक दिन उसका गला बैठ गया और वह चल बसा।"

ब्रिगेडियर साहब ने लबी साँस खींची। वे टुकडो-टुकडा मे अपनी बात पूरी कर रहे थे जैसे कहते हुए तकलीफ हो रही हो। नेतराम आखिरी वक्त बेटे को न देख पाया था। इसका उसे इतना मलाल हुआ कि वह दीवाना की तरह इधर-उधर डोलता फिरता। इतना ही नहीं, उसकी घरवाली टी०वी० की मरीज थी। इस हादसे के बाद दीवारो पर सिर दे मारती। या तो वह अपने या पति की रिहाई के दिन गिन रही थी। नेतराम का कोर्ट मार्शल खत्म हुआ तो दूसरे रोज वह भी चल बसी। फिर क्या था! नेतराम सरेआम मुझे गालियाँ देता फिरता। थूकता और चिल्लाता—और करो मेरा कोर्ट माशल!

पाँचवे रोज की बात है। हमारा लडका सुधाकर नजदीक के बँगले से अपने किसी साथी की बथडे-पार्टी अटैण्ड करके रात को पैदल टहलता हुआ घर लौट रहा था कि पीछे से किसी ट्रक ने टक्कर दे मारी। वह वहीं खत्म हो गया। सुनसान रात। हमारा अपना कैंटोनमेट एरिया। पर कौन-सा ट्रक था जो हवा की रफ्तार के साथ हवा हो गया? रहस्य। पर कैसा रहस्य? मेरा पूरा शक नेतराम पर था। पर सुबूत? वह तो दीवानगी की वजह से अस्पताल मे भरती था। हो सकता है डॉक्टर भी साथ मिला हुआ हो। मेरे सताए हुओ की गिनती कम न थी। हा सकता है, सारे जवान भी उसके साथ मिले हुए हो। जैसे पूरा का पूरा जहा यहाँ तक कि इश्वरीय सत्ता भी नतराम क साथ मिल गई हो सबने एक-साथ मरे खिलाफ बगावत छेड दी हो।

कइ रोज तक सवेदना प्रकट करनवाला का ताँता बँधा रहा। मुझे और मुझसे ज्यादा पावती को लगता कि यह सब ढाग है तमाशा है। मन ही मन सब खुश हैं, मुसकरा रहे हैं—'अच्छा हुआ! अच्छा हुआ! 'इसके साथ ऐसा ही होना चाहिए' की रट लगा रहे हैं। नेतराम भी आकर बैठा। आँसू बहाता रहा। नाटक करता है साला! पर पार्वती ने कहा—'नाटक किस बात का? इसके घर ता दा-दो मौते हुई हैं।'

'मैं इसे फाँसी पर चढा दूँगा।'

'अय की बिना सुबूत के कुछ मत करना। सुधाकर के असली कातिल तो आप हैं। उसे क्या, अपने को सजा दीजिए, अपने को।' पुत्र-वियोग मे ऐसा विलाप करने लगती कि मुझ सगदिल का कलजा भी फटने लगता। मामले की तह तक जाने के लिए मैंन पूरी लामबदी कर दी।"

फिर आगे क्या हुआ—यह मैंने नहीं पूछा। ब्रिगेडियर ने ही मेरे मुँह की तरफ गार करते हुए कहकहा लगाया। वे अपने कोट की जेब मे छोटी बोतल सँभाले हुए थे जिसमे से रह-रहकर थोडी-थाडी चूस लेते थे—"तुम्हे मजा आ रहा है ना सुनने मे ? कितनी इट्रस्टिंग स्टोरी है। क्लाइमक्स तक पहुँचते-पहुँचते और मनोरजक कथा बन जाएगी, देखना।"

"मैं जानता हूँ। अब घर चलिए।" मैंने उनके हाथ से बोतल खींचकर दूर नीचे घाटी म फेक दी। फिर उनके हाथ को जोर-जार से झटके देता हुआ खींचने लगा—"अब लौट चलिए।"

"अरे देखो तो सही आगे घटनाएँ कैसा शानदार मोड लेती हैं। पाँचवे या सातव दिन की बात बताता हूँ। रात को पूरे कैम्पस की बिजली एकाएक गुल हो गई। मैस मे चहल-पहल बहुत कम हो चली थी। एमरजेसी लाइट जली इसी बीच सन्नाटे को चीरती अजीबागरीब रोने या हँसने और धडाम से कुछ गिरने की भयानक आवाजे पेदा हुईं, और सब शात। मैस की तीसरी मजिल से नेतराम ने छलाँग लगा ली थी।

और इसके तीसरे रोज डाक से मुझे एक लिफाफा मिलता है—अब जीने का काई मकसद बाकी नहीं बचा। जब बीवी भी साथ छाड गई ता मकसद कैसा ? हाँ एक चाह थी—तुम्हे और तुम्हारी बीवी को, अपनी और अपनी घरवाली की हालत मे देखने की। देख लिया बिलखते हुए। मन खुश हो गया। मन रो उठा। मकसद पूरा हुआ। एक बहादुर की मौत मर रहा हूँ। हिम्मत हो तो ऐसी बहादुरी तू भी करके दिखा।

सचमुच रश्क हुआ नेतराम की बहादुरी से। मगर मेरी बुजदिली मेरी पार्वती मेरे सामने थी। बस अब यहाँ पर आकर सोचता हूँ किसके लिए जीना है ? उसके लिए जो मुझसे नफरत करती है ? मेरी सूरत तक देखना पसद नहीं करती ? मुझे *कातिल-कातिल* कहकर पुकारती है ? गश खाकर गिर जाती है ? उसके लिए मरा हाना न हाना बराबर है। देखा जाए तो मैं कौन-सा जिंदा हूँ। और बताऊँ ? प्राय दूसरे-तीसरे दिन अचानक किसी भी वक्त दिन मे या रात मे मुझे खाली देखकर, नेतराम आ उपस्थित होता है और पूछता है—क्या अभी तक जिंदा हो ?

इससे पहले कि कोई माकूल जवाब ढूँढूँ, वह विलुप्त हो जाता है, ठहाका लगाता हुआ—हा हा, हा! मैं उसे यही तो कहना चाहता हूँ कि मैं जिंदा कहाँ हूँ! ह ना?"

मुझे सब पता चल गया था कि आगे क्या होने वाला है। इसके लिए सतर्क था। इस नाटक का पटाक्षेप, दु खातिकी म परिवर्तन न हो, इसकी पूरी तैयारी कर चुका था।

अपनी बात खत्म करते ही वे, जैसे ही पहाडी से कूदने को हुए, मैंने फौरन आगे बढकर उन्हे अपने मजबूत हाथो मे जकड लिया। एक साथ चार-छह झटके दे मारे।

लौटते हुए उनका नशा खत्म हो चला था—"अरे, मैं यह क्या करने जा रहा था?"

"फिर से एक अच्छे इन्सान की हत्या। यकीन रखे, पार्वतीजी को सुधाकर मिल गया। उन्हे अब कुछ नहीं होगा।"

आगे बहुत-सी रोशनी दिखाई देने लगी थी।

●

फ़क़त तुम्हारे लिए

बेशुमार भीड। सडक के इस पार उस पार। हुजूम का हुजूम उमडा पड रहा था।

नाराज चिंघाड थी। होसले बुलद थे। तमाम खतरा को उठा लने की कुव्वत थी। जान पर खेलकर कुर्बानी देनेवाले जवाँ-मर्द थे।

देखते-ही-देखते, हर तरह के लोग आ धमके थे—शरीफ बदमाश मजा लेनेवाले।

कुछ लोगो के मुताबिक तो ये चिंघाडनेवाले नारे लगानेवाले लडके मजा बेमजा करनेवाले थे। काले दिल के। मैले दिल के, नालायक निकम्मे, लफगे, फालतू फड के कत्लेआम तक की धमकिया से माहौल को गर्मा देनेवाले बेमुरव्वत अडगेबाज।

दूसरी तरफ ऐसे फतवे जारी करनेवाले लोग जाबाजा की नजरा मे चापलूस बिके हुए, नामर्द हिजडे वगैरह-वगैरह थे।

इस टूटी-फूटी लद्धड बडी-बडी खरोचा से भरपूर सडक के किनार कोलतार से भरे ड्रम और बाल्टियाँ पडी थीं। ढेरा छोटी-बडी लकडियाँ और कुछ केरासिन के पीपे भी लावारिस-से पडे हगामे का देख रहे थे। नजारा साफ था कि जलती हुई

आग को पानी डालकर ठडा कर दिया गया था। मगर हर किसी के मिजाज तो गरमा रहे थे।

एक तरफ थोडा फासला किए, दो रोड-रोलर किंकर्त्तव्यविमूढ खडे थे।

लाठियाँ थीं। लाठीमार थे। बीच-बचाव करनेवाले। सत कबीरिया को लेकर नारे लगानेवाले। जिदाबाद कहनेवाले। मुर्दाबाद कहनेवाले।

—इतना ही बडा सत था ता मत्री काहे को बना ? भगती करता। राजनीति म क्या कूदा ?

सत कबीरिया की जय-जयकार करनेवाला की आवाजे उठ-बैठ रही थीं —नेता हो तो ऐसा हो, सत कबीरिया जैसा हो।

सभी एक-दूसरे की नजरो मे, निहायत चालाक थे। राजनीति करनेवाले। राजनीति मे भविष्य ढूँढने-बनानेवाले। महाधूर्त। किरकिरी करनेवाले। पक्के बेइमान थे। दश को छीलकर खा जानेवाले।

बडे आए न्याय के लिए लडने-मरनेवाले। बाप सडक नहीं बनने देगे। बाप का राज है। मजदूरा की दिहाडी पर लात मारेगे। साले मादर के ।

इल्जाम-दर-इल्जाम। दोनो तरफ स—एक-दूसरे पर।

अडगेबाज। ताडी देनेवाले। रगभग करनेवाले। लफगे। कानून से खिलवाड करनेवाले। नीच कमीन।

वहाँ पर मौजूद कई नस्ले थीं। कई किस्मे थीं। कइ पीढियाँ थीं। परेशान। पशेमान। गमगीन। नाचीज। नामुराद। नशेडी। तमाशबीन। हाठो के ऊपर खिंची कमान-सी मुसकान। अजामे-सफर ताकनेवाले—जैसे मेले-ठेले म आ खडे हुए हों। अपने-आपका नितात निष्पक्ष, नि स्पृह कहलानेवाले—'अपना क्या है।' दाना ही पक्षा का अपनी-अपनी जगह सही ठहरानेवाले। रोलर ही की तरह कभी इधर ता कभी उधर लुढक जानेवाले। न काहू से दोस्ती न काहू से बैर। न इस पक्ष मे न उस पक्ष म। न सडक न बनने देनेवालो से हमदर्दी, न सडक बनवानेवाला सत कबीरिया के पक्ष मे नारे लगानेवाला की हिमायत। सब ठीक ही है। कर लेने दा जो कर रहा है।

—सडक का क्या है। इसके लिए काहे का झगडा ? बन भी गई तो बारिश पडेगी फिर टूट जाएगी।

—कैसी भी हा सडक तो हर रोज यूँ ही पार हो जाती है। कीचड हो धूल हो चिथडा, पत्तो, टहनियो, रबड टायरो, टूट शीशो, हर तरह के गद-मुद से भरपूर हो या फिर एकदम से चमचमाती चमकीली, मुँह देखने लायक शीशे की मानिंद

—हाँ हाँ, साजन के या सजनी के घर तक हर सूरत तक पहुँचा देती है। सुख मे दु ख मे, एक-समान—कबीर-वाणी

—बक-बक बद। इनको ठिठोली सूझती है उधर से वे मरने-मारने पर उतारू हैं।

—न साले खुद चैन से बैठेगे न दूसरा का ढग से साँस लेने देगे।

—चुप साले बुढऊ। तुझे भडवे ले जाएँ।

—हँ-हऽ-हाऽ। झिक-झिक म से निकलती हँसी को फाँके।

दूर मन्दिर मे बजती घटियाँ—टन-टन।

साथ मे हवा के चद झाके, जो मोहित करनेवाली स्वर-लहरियो को ढा-ढो कर इधर ला पटकते—मगल-भुवन अमगल-हारी ।

कीर्तन के सुर से सुर मिलाती, पुलसी 'पीं-पीं' सीटियाँ।

साथ ही जीपा के हॉर्न—'पा-पा' हटो। आखिरी चेतावनी।

एस० पी० साहब। म्युनिसिपिल चेयरमैन। मजिस्ट्रेट।

टुक टुक अटेनशन। सैल्यूट। ठक-ठक।

धाँय-धाँय ठॉय-ठाँय। हवाई फायर।

यह चौथी जमाअत थी, प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त कबूल करवाने वाली—भागा-भागो, भो भो बहन के ।

उस मन्दिर की तरफ से ठडा झाका—सबको सन्मति दे भगवान्!

—मेरे नोजवान दोस्तो! मै यहाँ पर पुलिस अफसर की हैसियत से नहीं आया। आप सब भाई लाग इन चेयरमैन साहब की डिफिकल्टी को भी समझे। हम लोग अदने-से सरकारी कर्मचारी हैं। ऊपर से आए आदेशा का पालन कराना हमारा फज बनता है। फिर आप आप सबकी भी भलाई फर्ज बनता है।

—हमारी भलाइ या उस

—पहले इनकी पूरी बात तो सुन ल ।

—आला अफसरो और बडे लोगा नेताआ के नाजुक गला को हम हरगिज तकलीफ नहीं हाने देगे। हमीं दोना आप सबकी तरफ से भी कह-सुन लेते हैं।

भीड का कूदते-फाँदते दा लबे कद के युवक रोड-रालरा पर आमने-सामने खडे दिखाई दिए।

—अहाभाग्य! आज खुशनसीबी का दिन। डामर के ड्रम। राड-रालर। अफ्सरा इजीनियरा की चहल-पहल। तामझाम। ठाट-बाट। शानो-शौकत। एफीशसी। प्रमाण-पत्रा, प्रमाशना का झपट लेने की जगत।

—वाह साथ में कोतवाल साहब सिपाही, बदूक।

—जरूरत नहीं थी। तुम्हारे ही घटिया कारनामा की वजह से सबको आना पडा। समझ लो—शराफत नहीं, तो बदमाशी भी नहीं चलेगी। शर्म आनी चाहिए।

—शर्म-वर्म बद्तमीजी, बद्सलूकी ऊपर से नीचे आती है।

—तीन साल हो गए, सडक-मरम्मत के लिए गिडगिडा रहे थे। वह मशा आज पूरी हो रही है। अब सडक बन रही है तो खुद ही राह के रोडे बनकर खडे हो गए। खूब।

—हमारी क्या ओकात। यहाँ तो छुटभैये नेताओ की गहमागहमी है। शान है। नाम है। नाम नहीं है तो नाम कमा लेने की ललक है। कहते हैं बेइमानी हमसे कोसो दूर है। बदमाशी पर अगर हम उतर आएँ तो दो येज से ज्यादा नहा लगेगे पूरे देश का बेडा गर्क करने मे। अगर कुछ खाते हैं तो खिलाते भी हैं। फिर भला बचता ही कितना है। भुक्खडो को तो यह बहुत-कुछ दीखता है। अनपढ हैं। जाहिल हैं।

—हाँ हाँ यह सब बकवास है। गपशप है। समय-काटू मिक्स्चर है। पीते रहो। जीते रहो।

—अब बद करो बकवास। दोनो नीचे उतरो। होश मे आओ। जानते हो हमारा वक्त कीमती है। बहुत ड्रामा हो लिया। अपना भला चाहते हो तो मत्री के हाथ मजबूत करो। प्रशासन के काम मे बाधा डालने का नतीजा अच्छा नहीं होता। अब फालतू बोलना बद।

—चेयरमैन साहब। इन्हे कह लेने दीजिए। हल्के हो ले। डैमाक्रेसी है। कहो भैया कहो। लेकिन मत भूलना कि सडक-मरम्मत जनहित म हो रही है।

—यह सामती-डैमोक्रेटिक दरबार-पूजा है। सत कबीरिया मन्दिर म जाकर पूजा-अर्चना करगे। नई बनी प्याऊ का उद्घाटन करेगे। उनकी कार खस्ताहाल सडक से क्या नहीं गुजर सकती ? कार मे गद्दे होते हैं। मत्रीजी के नीच के गद्दे क्या इतने नाजुक हैं कि हिचकालो से फट जाएँगे ? हम नही होने देगे यह सब। बाद मे हम सडक पर चलेगे तो लगेगा मत्रीजी की जूठन खा रह हैं।

—इन नोजवानो से तो भगवान बचाए। न जाने कहाँ-कहाँ से मगज-खाऊ विचार लाद लाते हैं।

—तीन सालो से हर दफ्तर के चक्कर काट-काटकर, फरियाद कर-करके थक गए। कभी बजट का रोना। कभी लेबर का रोना। कभी मौसम की मार का रोना। आज सब रोने बद। बस मत्री-गान हो रहा है।

—सत कबीरिया—जिंदाबाद।

—सत कबीरिया—मुर्दाबाद! हाय-हाय!

—उस छोटे-से प्याऊ मे रखा ही क्या है! पब्लिक चालाक हो गई है। वाह, यह सडक ठीक करवाने का लासानी नुस्खा। यह तो खैर प्याऊ है गटर तक के उद्‌घाटन के लिए नेताओ को बुला लेते हैं। वे चले आते हैं। रास्ते-सडक सही हो जाती हैं। अखबारो टीवी मे फोटो। रेडियो मे नाम, नाम, नाम।

—राम नाम सत्य है! सत्यानाश हो!

—मत्रीजी, लौट जाओ लौट जाओ लौट जाओ!

—कैसे लौट जाएँ? तालियाँ नहीं पिटवानी? तब जयगान लडकियो से तिलक हार-वार का क्या होगा?

—लौट जाओ! लौट जाओ!

—अवसर-कुअवसर को पहचानो। आज सडक ठीक नही हुई तो फिर कभी नहीं होगी। पछताओगे! चुनाव अभी दूर हैं।

—देखी जाएगा, तीन साल और सही।

—तीन सालो मे कितनी दुर्घटनाएँ हुई हैं! अगले तीन सालो मे और कितनी होगी? सोचो सोचो! यह वक्त बार-बार नही आता। दर आई गगा का फायदा उठाओ!

—उद्‌घाटन-समारोह, या फिर सडक। एक ही काम—एक वक्त पर एक। बस एक काम।

—इनका दिमाग चल गया है एम० पी० साहब! ये लौंडे डैमोक्रेसी का नाजायज फायदा उठा रहे हैं। मजिस्ट्रेट साहब आप ऑर्डर दीजिए। हमे तीन घटो मे काम पूरा करना है। बस एक चेतावनी और।

—खूब, तीन साल का काम तीन घटो मे।

—फालतू चीचप्पड बद करो!

—यहाँ तो हर एक को हर तरह की आजादी है। हो-हुल्लड मचाने की। गाली देने की। अगले की बोलती बद कर देने की। भीड मे भगदड मचाने की। गडे मुर्दे निकालने की। कब्र ख्वार करने की। इतनी छूट तो होनी ही चाहिए। डैमोक्रेसी है।

लरजती आवाज—

> रस्मो-रिवाजो मे बदलाव क्यो न हो!
> उद्‌घाटन किसी वृद्ध पुजारी या
> पानी पिलानेवाले वाटरमैन
> वगैरह के हाथो क्यो न हो!

खवरा की सब्जी न सही
चटनी ही सही।
फोटोग्राफर कदम न रखे।
हम तो सही कदम रखने की
ताकत रखे।

—बस-बस बहुत हो लिया। हमारी शराफत का नाजायज फायदा उठा रहे हो। आप सबका दोस्त बनकर आया था। अपन को पुलिस का अदना-सा सिपाही समझता हूँ। लेकिन एस० पी० समझने के लिए मजबूर कर रहे हो। मजिस्ट्रेट साहब सब देख रहे हैं। लॉ एंड ऑर्डर तो मेनटेन होगा ही। आखिरी बार कहता हूँ—लौट जाओ। कर्फ्यू लगनेवाला है।

बदूकें हैं। उनमे गोलियाँ हैं।

धाँय-धाँय।

—देखो तुम भी इन परिन्दों की तरह उड जाओ। अभी हवाई फायर हुआ है।

—यह सरकार निकम्मी है।

—मन्त्री-सतरी वापस जाओ।

—नहीं तो टूटी सडक पार कर जाओ।

पक्ष-प्रतिपक्ष की नजरो में।

हया की दुहाई थी। बेहयाई थी। बेशरमी थी। दगा करनेवाले थे। दगा भडकानेवाले थे। दगा रोकनेवाले थे—दिल से। बेदिली से। बेहिसाब तमाशबीन थे। प्रेस फोटोग्राफर थे। खबरनवीस थे। बाँछें खिल रही थीं। फिर भी सहमे हुए थे। एक-दूसरे से पहले मैटर भिजवा देने की होड थी। डर था—दगा, फसाद न बन जाए। कर्फ्यू से खबरें ठडी न पड जाएँ। कर्फ्यू की खबर ही मुख्य खबर होकर न रह जाए।

दूसरे दिन के समाचार-पत्र इन्हीं खबरों से अटे पडे थे। एक से बढकर एक शीर्षक चमक रहे थे—

शहर मे रिकॉर्ड-तोड दगा—एक मरा छत्तीस घायल। उनमे से चार पुलिसवाले। तीन सडक-कर्मचारी।

बेजान जानो मे जान फूँकने की कोशिश सफल।

शर्म का तकाजा—गरमाया माहौल। सडक बेहाल।

विवरण कुछ इस प्रकार से छपे थे—

सडक-मरम्मत-काय म बाधा पहुँचाने क जुम म बीस लागा का गिरफ्तार किया गया है। इनमें दा बूढे और तीन महिलाएँ भी शामिल हैं। प्रशासन के अनुसार गाली चलन स एक की मृत्यु हुई है जबकि आम लागा न यह सख्या चार बताइ है।

प्रशासन और आदालनकारिया क बीच पहल बहस हाती रही। प्रदशनकारिया का कहना था—अगर सडक खतरनाक है ता आज चद मिनटा क लिए मत्रीजा भी जाखिम उठा ल। दूसरी तरफ प्रशासन अपनी जगह अडा हुआ था कि यह उनकी तथा मत्रीजी की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। सडक ठाक इसी वक्त बन क रहेगा। आखिरकार नहीं समझन पर पुलिस का गाला चलानी पडी।

एक सपादक महादय जा अपने को सपादक से ज्यादा सवाददाता मानते थे सवाददाता स ज्यादा कहानी-लखक कहानी-लखक से ज्यादा अपने-आपका व्यग्यकार क रूप म तरजाह दत थ ने लिखा था—

नजारा देखते ही बनता था।

भीड पर भाड चढ रही थी। बेअसरी का आलम। पान की फुहार जैस हाली के रग बदरग। लाठा का रग-ढग। मारा-मारी। ताड-फाड। पुलिस क नर्म-नम बत। लागा के जिस्म सख्त। उछल-कूद। लाठियाँ खाते-खात लाठिया पर से कूद जाना। दूर जाकर पत्थर बरसाना। सभी अपन मोर्चों पर डटे थे। सभी के अपने-अपन निशाने थे अपने-अपने टार्गेट्स जिन्हे वे जल्द से जल्द हासिल कर लेना चाहते थे। अपने-अपन तर्क थे और अपनी-अपनी व्याख्याएँ।

प्रशासन धीरे-धीर नाप-तालकर एक-एक कदम बढाता हुआ अपने कत्तव्या का पालन कराता है ताकि किसी इन्क्वायरी की जवाबदेही आसानी से कर सक। वह किसी की धौंसपट्टी या चौधराहट चलने की गुजाइश नही चलने दे सकता। वहाँ घुडदौड भी हुइ थी। स्पीड-ब्रेकर ताड डाल गए थे।

उधर एक पुलिसमैन भी भीड का उनका भविष्य समझाने पर आमादा था— अगर आप सज्जन मत्रीजी का दिमाग खराब कर देगे ता तुम लोगा के उलझे कामा, समस्याआ का निवारण कैस हागा? हाश म आआ। अगर अपना इज्जत का खयाल नहीं ता मत्रीजी की इज्जत का खयाल करो। दश के जितन बड मत्री होते है, उतनी ही बडी उनकी इज्जत होती है। अगर उनकी इज्जत की लुटिया डूब गई ता तुम सब डूब जाओगे।

एम० पी० साहब ने उसे चुप कराया था।

दूसरा तरफ कुछ मनचल भागडा नाच रह थ—गारी का गगरिया पतली कमरिया पनघट का डगरिया। आ जा-आ जा-आ जा इसी सडक स।

अन्य स्वर चहक रहा था—

—बदहवासो बदमिजाज हल्काए हुओ होश मे आओ! जयकारा मारो! अपना कल्याण चाहते हो तो मत्रीजी के हाथ मजबूत करो!

—ताकि मजबूत हाथो से कैंची चला सके।

—जा जा जा गोरी जा! मत्रीजी को तिलक लगा। झोपडी का महल बना।

एक अखबारनवीस ने एक लीडर के हवाले से लिखा था—

शहर की इज्जत का तकाजा था—पीछे हट जाओ। निष्ठा-सघर्ष का तकाजा था—भिड जाओ! भागो! मारो! फिर वापस भागो! चिढाओ! अगले को भागने, हमला करने पर मजबूर कर दो। उन्हे अपनी ही कब्र खोदने पर विवश कर दो। अगर दोनो ही तरफ से शमसारी सिर से गायब थी तो बेहयाई कैसी ?

सुना है इस लीडर को दगा भडकाने के जुर्म मे गिरफ्तार कर लिया गया है।

मगर खुलासा यह कि सडक वैसी की वैसी धरी रह गई। सुरक्षा-कारणो से मत्रीजी का दौरा स्थगित कर दिया गया है।

बाद मे एक सक्षिप्त सवाददाता-सम्मेलन मे मत्रीजी ने बताया कि कुछ लोग भीतरी तौर पर जलते हैं। लालफीताशाही-कर्म से भी इन्कार नही किया जा सकता। ऐसे नामुराद मारा-कुट्टी के माहौल मे न जाकर उन्होने अधिक खून-खराबे को रोकने मे मानवोचित भूमिका का परिचय दिया है। कर्फ्यू में भाषण सुनने कौन आता ? वैसे वे इस नगर के हित मे बहुत सारी लाभप्रद घोषणाएँ करनेवाले थे।

जब उनसे पूछा गया कि क्या अब वे घोषणाएँ प्रेस के माध्यम से नहीं करेगे ? तो उनका उत्तर था—नहीं। बिल्कुल नहीं (ले लो मजे)!

●

तिलिस्म से बाहर

मैं सिर्फ रास्ता ही नहीं भटका था बल्कि कहा यह जा सकता है कि इस विराट ससार म, मेरी अपने अन्दर की जो इकाई का अश है, उसके ही काइ पाँव नहीं रह गए थे।

इस हालत में, मैं औरा को चलता हुआ जरूर दिखता हूँगा, मगर असलियत मे मैं सासारिक वायुमण्डल की सूक्ष्मतम तरगा मे तैरता हुआ अपना आधार तलाश रहा था।

हुआ यह था कि जिस वायरलैस रिसीविंग स्टेशन पर मैं काम करता हूँ, वही वहाँ से उठ गया था। वहाँ पर हमारे स्टाफ का कोई भी व्यक्ति मौजूद नहीं था। हड्डियो का एक ढाँचा वहाँ खडा था। उसने मुझे बताया कि वह सिर्फ मेरी ही खातिर वहाँ खडा है। उसे कट्रोल रूम से भेजा गया है ताकि मुझे सिर्फ इतना बताए कि ट्रासमिटिंग रिमोट-लाइन खराब हो चुकी है। यहाँ पर कम्युनिकेशन सम्भव नही है। इसलिए फौरन, (*फौरन* पर उस ढाँचे ने विशेष जोर दिया था) उस पार के गाँव में—ट्रासमिटिंग स्टेशन पर मेरी उपस्थिति अपेक्षित है। एमर्जेंसी लग चुकी है। जरा भी ढील-ढाल मुझे जेल तक म डाल सकती है। इतना-भर

कहते ही मुझे किसी सवाल का मौका दिए बिना ढाँचा हवा हो गया था।

सक्षेप मे—मेरी मजिल न मालूम किस कोने म जा दुबकी है। मेरी मौजूदा जरूरत और मजबूरी जल्द-अज-जल्द उस मजिल को तलाश करना है वरना मैं इस एमर्जेंसी मे धर लिया जाऊँगा।

वास्तविक कार्यालय मेरे घर से ज्यादा दूर नही हे। अतएव पैदल ही चलकर पहुँच जाता हूँ। अब नए दिशा-निर्देशा के अनुसार, नए कार्यस्थल की ओर बढने लगा। अननुमानित लम्बी दूरी ऊबड-खाबड रास्ता। आँखा क सामने धुँधली मजिल की केवल कल्पना। बिना आर-छोर के भला कोई कहाँ कैसे पहुँचे? सिगनल इडीकेटर या डायरेक्शनल फाइँडर भी ता नहीं मेर पास। मैं जमीन नहीं आसमान देख रहा था। शायद कहीं कोई एरियल दिख जाए या फिर कहीं से शॉर्ट-लाग व्हिसिल ही सुनाई पड जाए।

देर ता हो ही रही थी पर इन्साफ के लिहाज स इसके लिए मुझे कसूरवार नहीं ठहराया जा सकता था। वक्त रहते मुझे इस बदलाव और ठिकाने की इत्तिला नहीं मिली थी। मैं तो बस अँधेरे मे इम्तिहान म, डाल दिया गया था। मैं इस हालत म कर क्या सकता था। मैं सिर्फ चल सकता था। मै चल रहा था—अपनी मामूल रफ्तार से कद्रे तेज। कोई हमसफर नहीं कोई रहबर नहीं। मने रफ्तार का और तज करने की काशिश की।

सहसा उस धुँधलके मे एक चमक पदा हुई। एक लेखक-टाइप, पुराना मिलनेवाला बेरानक शक्लो-सूरत का एक लम्बा शख्स कन्धे पर भूसला बदरग, दा परादियावाला थैला झुलाता मेरी जानिब चला आ रहा है। काल माथे स शुरू होते घने काले बाल खडे-खड लहरा-से रहे हैं। पता नही चलता, माथा कहाँ से शुरू हाता है आर सिर कहाँ से।

छूटते ही वाला—"पहचाना कि नहीं पहचाना? बारह-पन्द्रह साल पहले परेश खत्री के साथ मेरे यहाँ आए थे, फिर एक-दा मत्तबा "

म अपनी याद का खराचने लगता हूँ। खराचते-खराचते में अन्दर तक हिल जाता हूँ। परेश खत्री अब इस ससार म नही था। मेरे हिल जाने का सबब यह था कि मरने से चन्द महीन पहले परेश खत्री ने, मुझे इसी लेखक-टाइप मित्र के बारे म ही तो (शायद) बताया था कि वह (यही) एक एक्सीडेंट म मारा जा चुका है। मै यह साचते हा फिर से रामाचित हा उठा।

इस विचित्र-सी स्थिति से अपने का उबारने की गरज से मैंने अपने से कहा—यह भला कसे हो सकता है। परेश खत्री ने शायद इसी मित्र के मरने की बात न हो कही ह जरूर किसी ओर के बार म कहा होगा। मुमकिन है मेरे

सुनने-समझने मे फर्क रहा हो। मैं तेज साँस के साथ अपने-आपको तसल्ली देने लगा।

मगर अपनी इस तसल्ली को चिकनी मछली की तरह अपनी कनपटी मे फडफडाते पाया। किसी मरे हुए का जीता-जागता अहसास मेरी टाँगे काँपने लगीं। एक अजीब-से रस म डूबन-उतराने लगा। अपने ऊपर काबू पाने के लिए पहले सायास पुरानी यादा में घिरने लगा। फिर एक के बाद दूसरी चीज बारी-बारी से मेरे जेहन म कूदने लगीं—यह जादू भी है, हिप्नोटिज्म भी और जिन्दगी की सबसे ऊपर की सचाई भी। यह सब एकदम वैज्ञानिक है। अभी हम प्रयाग की स्थिति मे हैं। हम लाग प्रयोग कर रहे हैं। हमारे प्रयोग सफल हो रहे हैं। आनेवाले समय म हमारे ये कार्यक्रम सामान्य मानव के लिए हितकारी सिद्ध हाग। यह सब नीतिशास्त्र के सिद्धाता पर आधारित है—नैतिक मूल्या को हासिल करने का तरीका। सत्यमव जयते। ये लोग यही सब कहते थे। बहुत पतली-पतली किताबे थीं जिन्हे ये लोग आए दिन लाते थे। उस सस्ते जमाने मे भी उनकी कीमते तीन से चार सौ रुपए तक की होती थीं। मेरे काना मे कुछ मन्त्र भी गूँजने लगे जिन्हे यह परेश खत्री कैप्टन के० के० वासवदत्ता और उनके साथी-मित्र मिलकर कुछ विशेष प्रकार के उच्चारणा के साथ विधिवत् गुनगुनाते थे। इस रीति-नीति के द्वारा सिद्धि-प्राप्ति की बात किया करते थे। यह भी कहते थे कि यह सिद्धि अपनी परम्परागत सिद्धि से बहुत अलग है और आधुनिक स्टेटिसटिक (साख्यिकी) पर आधारित है। उद्देश्य स्टेटिज्म (राज्य नियत्रणवाद) के अधिगम पर जनहित की कल्याणकारी भावनाआ को सुपर-इम्पाज़ करना है। दिन-प्रतिदिन की अधेरगर्दी आपा-धापी पर अध्यात्म द्वारा विजय प्राप्त करना है।

एक गहरे अँधेरे बँगले के किसी अति जगमगाते बडे कमरे मे मुझे भी ये लाग तीन-चार मर्तबा ले गए थे। वहीं कैप्टन (डॉ०) के० क० वासवदत्ता का बँगला था। डॉ० वासवदत्ता वहाँ पर अपने दो-एक नौकरा के साथ रहते थे। उन्हाने विवाह नही किया था। शायद अपने इन्हीं अन्वेषण-कार्यो के कारण।

मैंने स्वय को मजबूत किया फिर भी जबान थोडी लडखडा गई। अन्तत मैं पूछने मे सफल हुआ—"परन्तु मुझे तो परेश खत्री ने मुआफ कीजिएगा अगर मुझे काई गलतफहमी नहीं हो रही तो और सचमुच अगर आप बुरा न माने " मैंने साँस छोडी और आगे जोडा—"उस (परेश खत्री) ने आप ही के बारे मे एक बार बताया था " यहाँ आकर मैं फिर अटक गया।

"कि मैं एक एक्सीडेट मे मारा जा चुका हूँ," उसने पूरी गम्भीरता के साथ अपना वक्तव्य जारी रखा—"बिल्कुल ठीक बताया था परेश खत्री ने।"

मैंने सोचा—इतना कहकर वह मुसकराएगा। किन्तु नहीं। वह अधिक गम्भीर दिखने लगा। वह आगे बोला "सच के अलग-अलग स्तर होते हैं। यह डॉक्टर का सच था। डॉक्टर ने मेरा डेथ-सर्टिफिकेट इशू कर दिया था। आप समझ सकते हैं तब तो यह बहुत-से लोगो का सच हो गया और परेश खत्री का भी यही सच बना। उसने मेरी मौत पर दो आँसू बहाए और चला गया। दरअसल मुझे अदरूनी चोटे आई थीं। रिश्तेदारो की प्रतीक्षा मे, मेरी लाश को सहेजकर रख दिया गया था। कैप्टन डॉ० वासवदत्ता को भी सूचना दी गई थी। वे आए थे तो उन्होने खुशी जाहिर की थी—'कुछ नहीं बिगडा है। शुक्र है आपने अन्तिम सस्कार नहीं किया।' आध-एक घण्टे के मन्त्रोपचार के बाद वह मेरी लाश को उठवाकर अपनी प्रयोगशाला मे ले गए थे। स्क्रीन पर मेरी नाडियो का हिसाब-किताब कर रहे थे। अन्त मे सब हिसाब ठीक-ठाक बैठाकर रेसिपरेटर (साँसयन्त्र) के द्वारा मुझे जिलाकर खडा कर दिया था। अब यह कैप्टन साहब का सत्य था जिसे आप अब देख रहे हैं।"

सहसा मेरे मुँह से घबराहट के साथ निकला, "हाँ, कभी-कभी ऐसी घटनाएँ अखबारो म पढने को मिल जाती हैं।"

"बिल्कुल यही हुआ था मेरे अपने साथ। इस बहाने मैं दूसरा लोक भी देख आया। कोई इसे बेशक न माने। साइंटिस्ट भी कहाँ मानते थे। अब कुछ-कुछ मानने लगे हैं। इस विषय में डॉ० वासवदत्ता ने जो प्रगति की है, उसका उल्लेख करना कठिन है। असम्भव-सी लगनेवाली समस्या को सुलझाया है। आप सोचिए, उस जमाने से आज तक समय भी कितना गुजर चुका है। तभी से डॉ० साहब लगभग चौबीसो घण्टे अपनी प्रयोगशाला में बडी स्क्रीन के सामने बैठे तजुर्बे पर तजुर्बे कर रहे हैं—तजुर्बे सितारो से लेकर चींटियो तक के।"

"हम लोग जिस अँधेरे बँगले मे जाया करते थे, क्या उसी मे जमे हुए हैं?" मैंने जिज्ञासावश पूछा।

उसने मुझे बीच मे टोकते हुए कहा—"वह देखो। यह रहा यही था ना? गौर किया?"

सामने एक लम्बा-गहरा बँगला दीख रहा था। मैंने उसे पहचाना "हाँ-हाँ उसी बँगले मे आकर कैप्टन डॉ० वासवदत्ता के रेडियो से भविष्यवाणियाँ सुना करते थे हम लोग।"

मैं फिर से एकबारगी दहशत स भर जाता हूँ—तो यह लेखक-टाइप महोदय इसी बँगले के आसपास क्या मँडरा रहे हैं? यह सचमुच खुद वही हैं या उनकी रूप-छाया?

वह कह रहा था, "हाँ-हाँ अब भी। मैंने बताया ना अब तो बहुत प्रोग्रेस कर ली है उन्होने। बल्कि यह कहना अच्छा होगा कि क्लाइमेक्स (चरम बिन्दु) पर हैं आजकल। चल अन्दर चलकर देख? खुश होंगे कैप्टन साहब, तुम्हे देखकर।"

"पर और देर हो जाएगी। ओह, मेरा दफ्तर कहाँ चला गया? इस वक्त यही मेरी समस्या है।" मैं फुसफुसाया।

"तो चलो, उन्हीं का लाभ ले।" उसने मेरा हाथ पकड लिया। तब उसकी शात बर्फीली अँगुलियो के सहारे मैं धीरे-धीरे उसके साथ चलने लगा।

हमे आते देख दूर से ही अर्दली ने हमे सैल्यूट लगाया। कहा—"चलिए अन्दर। साहब बुला रहे हैं।"

"तुम्हे गलतफहमी तो नहीं हुई?" मैं थोडा तन चुका था, "हम लोग तो इधर आनेवाले नहीं थे।"

"साहब को सब-कुछ मालूम हो जाता है कौन-कौन कब, कहाँ आने-जाने वाला है।" अर्दली विनम्रता से उत्तर दे रहा था।

मेरी जबान म हैरत तैरने लगी "क्या मेरे दफ्तर का अता-पता भी बता देगे? नहीं तो मैं कहीं का नहीं रहूँगा। ओह, कहाँ चला गया मेरा दफ्तर?" वाक्य पूरा करते न करते मैंने माथा पकड लिया। हताश और अदना हो चला था मैं उस अर्दली के सामन।

"यह तो वही जाने" अर्दली प्रत्युत्तर दे रहा था जरा-सा रुककर बोला "वैसे उनके लिए कठिन क्या है।"

"चलो!" मित्र बोला।

मैंने ससकोच अपने पैर डॉ० वासवदत्ता के चैम्बर म रखे। अपनी मजिल की तलाश के मेरे सारे विकल्प शायद इसी चैम्बर मे आकर जैसे सिमट गए थे।

मैंने उन्हे अपनी पुरानी याद दिलाई तो कैप्टन के० के० वासवदत्ता हँसने लगे। खनक पैदा करती एक जवान ताजातरीन हँसी, "मैं इतना भुलक्कड नहीं हूँ दोस्त। यह तो कुछ भी अर्सा नहीं बीता अगर पचास साल भी गुजर गए होते तो क्या मैं तुम्हे इसे और तुम्हारी तमाम मित्रमडली को भूल सकता हूँ? एक तो ज़िदादिल इन्सान कभी भुलाए नहीं जा सकते दूसरे यह (उन्होने अपने उपकरणो की ओर इगित किया) सब-कुछ तरोताजा रखते हैं हमारे लिए।"

"शुक्रिया कैप्टन साहब। बहुत-बहुत शुक्रिया।" मैंने गला साफ किया "दरअसल इस वक्त बात यह है कि " मुझमें सिहरन तैरने लगी और मैं जरा अटका।

"कि तुम अपना दफ्तर खो चुके हो, यही ना ?" उन्होंने ठहाका लगाया—"इसका भी समाधान ढूँढ निकालेंगे। घबराओ नहीं। तुम्हें कुछ और करिश्मे दिखाएँगे। मगर इससे पहले कुछ नाश्ता-पानी तो ले लो।" उन्होंने अर्दली को पुकारा।

गला सूखा होने के बावजूद मैंने पानी वगैरह के लिए मना किया—"इस तरह और देरी हो जाएगी और मेरे खिलाफ उन्हें प्रशासनिक कार्रवाइ करने का मौका मिल जाएगा।"

"पर इस देरी के लिए तुम कतई जिम्मेदार नहीं हो।"

"यह एक हकीकत सही, पर आजकल किसी बात का कोई भरोसा नहीं। खासतौर पर मैं तो निशाना बन ही सकता हूँ।"

"इत्मीनान के साथ बैठो। हम पूरी मदद करेंगे। इस स्क्रीन पर डाटाज तो फीड करने पड़ेंगे। तुम्हारे पास तुम्हारे दफ्तर का कोई चित्र है ?"

"वायरलैस बिल्डिंग प्रतिबंधित क्षेत्र और गोपनीय विभाग होता है। वहाँ का चित्र लेने का मतलब अपराध करना होता है।"

"खैर, इससे अधिक फर्क पड़नेवाला नहीं। हम विस्तृत-पटल पर आएँगे और उसमें तुम्हारा फेस कुछ देर के लिए एडजस्ट करेंगे। फिर तुम्हीं अपना दफ्तर देख लेना।" वे बोले और नजर घुमा ली।

तब तक नाश्ता आ चुका था। वे एक के बाद एक बटन दबाते रहे। बड़ी स्क्रीन पर बहुत-से दृश्य बारी-बारी प्रतिबिंबित होने लगे। पहले बहुत फीके, फिर गहरे रंगों में उभरने शुरू हो गए। हम नाश्ते के साथ-साथ एक फिल्म का आनंद लेने लगे। किन्तु यह आनन्द शीघ्र ही जुगुप्सा में परिवर्तित होने लगा। पहले जो मधुर संगीत वीणा, तानपूरा, शहनाई आदि वाद्ययन्त्रों द्वारा सुनाई दे रहा था और जिन्हें बजानेवाले कोमल और गोरे हाथ थे, वे क्रमशः काले-काले मोटे हाथों में तब्दील होने लगे। वीणा, तानपूरा, शहनाई के स्थान पर बड़े-बड़े ड्रम और ऊलजलूल ढोल आ गए, जिन्हें भारी-भरकम टेढ़ी लकड़ी के हथौड़ों से पीटा जा रहा था। कहीं कोई तालमेल नहीं था। संगीत के नाम पर चीख-चिल्लाहट और डॉक-डॉक थी। बजानेवालों के चेहरों पर क्रूरता थी। सारी शालीनता ध्वस्त हो रही थी। कोई किसी के ब्लाउज में झाँक रहा था तो कोई ड्रम पीटते-पीटते किसी के नितम्बों पर ही थप-थप की ध्वनि निकालने लगता। लड़कियाँ गोलाकार चक्कर काट-काटकर अपनी मिनी स्कर्ट लहराकर ऊँचा और ऊँचा करने लगी थीं। इसका ठीक से नजारा लेने के लिए दो बूढ़े आकर फर्श पर बैठ गए थे। उन दो बूढ़ों के साथ एक बूढ़ी औरत भी थी। वह भी यही सब-कुछ पूरी ठसक के

साथ देख रही थी। सब के साथ, खासकर बूढा के साथ, मसखरी कर रही थी। अपनी छातियां को अपने हाथो से दुलार रही थी। देखते ही देखते वहाँ और बहुत-सी लडकियाँ आ गई थीं जो अब नृत्य के नाम पर अश्लील हरकते कर रही थीं। बूढे उन्हें ललचाई, बेबस नज़रो से ताक रहे थे। उनके मुँह से झाग आने लगा था।

मुझे उबकाई हुई। बडी मुश्किल से मैंने किसी तरह उलटी रोकते हुए पूछा "यह सब क्या है ? मेरा दफ्तर बताइए प्लीज।"

"धीरज रखिए। वह भी आएगा।" कैप्टन वासवदत्ता ने बूढो की ओर इंगित करते हुए उत्तर दिया—"अभी इन्हे एन्ज्वॉय कीजिए।"

"यह कौन-सी एन्ज्वॉय करने की चीज है।" मेरी अकुलाहट बढ रही थी।

"यह सब सामती जिन्दगी की सदाबहार सचाई है। इन बूढो के अतीत की सचाई भी दिखलाता हूँ। इन्हें अभी यहाँ बुलवाए लेते हैं—टेलीपैथी।" यह कहते हुए उन्होने तीन स्विचो को बारी-बारी से दबाया। फिर स्क्रीन सेट बन्द कर दिया।

"तो आपके स्टेटिज्म पर अध्यात्म की विजय का क्या हुआ जो आपका असली मकसद था ?" मैं पूछे बिना न रह सका।

"होगा, होगा प्रभाव पडेगा। धीरे-धीरे हम प्रगति की ओर अग्रसर हैं।" कहने को उन्होने कहा परन्तु मुझे उनकी वाणी मे पहले-जैसे आत्मविश्वास का अभाव लगा।

दस और पन्द्रह मिनट के बीच का समय, जैसे वसन्त ऋतु के आगमन का आभास। वायुमण्डल शीत-शान्त और हल्की-हल्की लुभावनी हलचल। बाहर जैसे दरख्तो की टहनियाँ आपस मे छेडखानी कर रही हैं। पक्षियो के कलरव स्वर। कोयल की लरराती लम्बी मीठी गूँज।

वही बूढी औरत बीच मे है और दोनो बूढे अपनी-अपनी छडी टेकते हुए वहाँ दाखिल होते हैं। डॉ० वासवदत्ता उनकी ओर देखकर मुसकराते हैं। बदले में वे तीनो भी मुसकराते हैं। तीनो के चेहरो पर जिज्ञासा लिये एक ही भाव है—"कहिए कैसे याद किया ?"

"हमारे पास एक दवा है," डॉ० वासवदत्ता ने कहा "कहो तो तुम तीनो को जवान बना दूँ ?"

"यह कैसे मुमकिन है हुजूर ?" लम्बी दाढीवाले ने जरा झुककर कहा।

"मुमकिन तो है। देखना यह होगा कि क्या यह मुनासिब भी होगा या नहीं ? अभी देखते हैं।" इतना कहकर डॉ० साहब ने अपने टेबल के दराज से एक मोटी किताब निकाली। किताब के पन्नो में एक चपटा पीले गुलाब का फूल

पडा था। उन्हाने उसे मेज पर रखा। फिर लकडी की बडी अलमारी से एक बोतल निकाल लाए। बोतल मे रखे द्रव्य की दो-तीन बूँदे उन्होने उस फूल पर छिडकी। देखते ही देखते फूल फिर तरोताजा होकर महक उठा।

उन्हाने कहा—"यही।" आर उन तीना पर उसी द्रव्य का हल्का-सा छिडकाव कर दिया। फिर क्या था! तीना ही जवान होकर नाचने लगे। जवानी का खुमार इतना बढा कि वे पिछले कई वर्षों मे लौट गए। दोनो ही उस जवान लडकी को अपनी-अपनी गिरफ्त मे लेने के लिए खींचने लगे—बेकरार, अलमस्त और मदहोश। लडकी भी अजीब-अजीब हाव-भाव से सारी हया छोडकर, कभी इधर तो कभी उधर मटक-मटककर दोनो को रिझाने लगी।

इस लडकी को लेकर कुछ देर तक ता इन दानो लडका म पहले नोकझाक चलती रही, फिर वे दोनो एक-दूसरे से बुरी तरह से उलझ गए। गाली-गलौज करने लगे और अन्तत कमरे का सामान उठा-उठाकर एक-दूसरे को मारने लगे।

"बस-बस इतना ही काफी है।" इतना कहकर डॉ० वासवदत्ता ने उन पर कोई राख छिडक दी। वे तीनो वापस बूढे हो गए। हताश, निराश होकर सोफे पर बैठ गए और हाँफने लगे।

"अब हो लिया आराम " कहते हुए डॉ० वासवदत्ता ने उन तीनो के सामने कसकर हाथ जोड दिए—"बडी खतरनाक होती है आप लोगो की जवानी। अब तशरीफ ले जाइए।" वे अपनी-अपनी छडियाँ टेकते हुए वहाँ से चले गए।

डॉ० वासवदत्ता मुझे कहानी सुना रहे थे, "इसी औरत को लेकर पैंतालीस साल पहले इन दोना म झगडे होते रहते थे। दोनो ही नवाबी ठाटबाटवाले घरानो के लडके। ऊपर से पूरी तरह राजनैतिक रगत चढी हुई। लडकिया पर बेतहाशा पैसा पानी की तरह बहाते थे। इस लडकी को लेकर तो दोनो ने एक-दूसरे पर इरादा-ए-कत्ल के मुकदमे दायर कर रखे थे। लडकी भी कम लम्पट नहीं थी। कभी इधर तो कभी उधर सुनहरी मछली की तरह फिसलती रहती। बाद मे एक डी०एस०पी० से शादी कर ली। दानो ही टापते रह गए। दस साल गुजरे, डी०एस०पी० साहब को किसी न मार डाला था। पता नहीं चला किसने। तब से यह औरत अपने पुराने आशिको के बीच उठती-बैठती है।"

"मान गए डॉ० साहब आपको!" मैं आजिज आ चुका था "अब और नहीं। मेरा दफ्तर "

मैने पहली मर्तबा डॉ० वासवदत्ता की पेशानी पर फिक्रमन्दी की लकीरे देखीं मगर उन्होने अपने स्वर को सयत रखा—"हाँ-हाँ लो अभी लो।" यह कहते हुए उन्हाने फिर से स्क्रीन का बटन ऑन कर दिया। अब की दृश्य अधिक

भयावह एव वीभत्स हो उठे। कोइ गुण्डा सरआम रिवॉल्वर लिये बाजारो म लूटपाट मचा रहा है। राजनैतिक दलो के लाग रथा पर खडे चुनाव-प्रचार के नाम पर दहला देनवाल नार लगा रहे हैं। भाषण के नाम पर दूसरे दलवालो का गन्दी से गन्दी गालियाँ। धर्म के नाम पर धमकियाँ। बूथ कैप्चरिंग। जजीरा के साथ एक-दूसर पर जानलेवा हमले। सरेआम बच्चियो के साथ बलात्कार।

"बस कीजिए, डॉक्टर साहब बस।" मैंने अपनी हथेलिया से अपनी आँख ढँकत हुए कहा, "और नहीं देखा जाता। अब तो बस कृपया मेरा दफ्तर दिखला दीजिए।"

"जो यथार्थ होगा वह गैरहाजिर तो नहीं हो सकता। इससे घबराकर हम-तुम जिन्दा नहीं रह सकते।"

"पर बिना आधार कौन जीता है। मेरा दफ्तर " मेरा लहजा रुआँसा और साथ ही किसी बेबस बच्चे की तरह सख्त हो चला—"मेरा दफ्तर दिखलाइए नहीं तो "(नहीं तो के आगे मेरे पास कुछ नहीं था)

उन्होने स्क्रीन पर एक भूरी स्क्रीन और चढा दी। दृश्यावली एनलार्ज हो उठी। उन्होने मुझसे कहा—"अब ढूँढ लो इसम से जो कुछ ढूँढना है। मैं अभी दस मिनट म फ्रेश होकर आता हूँ।"

वे चले गए तो मैंन देखा—अपना ही शहर। उसका एक-एक घर। उन घरो मे से मेरा घर टेढा झुका हुआ। ककरीला रास्ता। सूखी पहाडी। तालाबो का कीचडयुक्त मटमैला पानी। मैं चौंका। मेरा पूर्व कार्य-स्थल धीरे-धीरे सुलग रहा है। उसम से आग की लपटे उठ रही हैं। धुआँ इधर-उधर फैलता जा रहा है।

फिर दूर तक फैली बहुत-सी बिल्डिंग। छोटे-बडे कई मकान बँगले, दफ्तर। हाँ बहुत-से नए दफ्तर भी। लेकिन मैं अपने नए दफ्तर को तो पहचानता नही था। कौन-सा है मेरा दफ्तर? कोई फायदा नही घूर-घूरकर देखने का। हाँ किसी दफ्तर के दरवाजे पर या आसपास हमारे स्टाफ का कोई-सा आदमी ही दिखाई दे जाए—इसी आशा मे फिर से आँख फाडने लगा। आँखो मे पानी भर आया।

काश, वहाँ पर जहूर नजर आ जाता। वह बाबुओ अफसरो को पटाकर या चापलूसी करके राज की बात ले आता। फिर एक कप चाय दो कचौडियो से अपने उपकार को भूल जाता। जादूगर मैकेनिक पूनम होता तो जोड-तोड करता रहता। (हालाँकि जादू के कई करिश्मे तो देखे-परखे जा चुके थे मगर फिर भी मेरे लिए कुछ करता तो। मुझ कोइ तो चाहिए था) साला बसल ही मिल जाता और कुछ नहीं होता तो 'भाई' कहकर दिलासा तो देता। चलो चलकर देखते हैं

अगर कोई मान जाए तो। रमेश करीम, किशोर, भीम, जयन्त, ओम की भी याद आई। ऐसे मौके पर यह गीदड-पंक्ति दगा न देती। अन्दर से जडे काटनेवाले भी अकसर आँखों की शर्म खा जाते हैं। शब्बीर तो जी-जान लगा देने की कसमे खाता।

मगर सम्भावना मेरे विरुद्ध विद्रोह की भी तो हो सकती थी। मेरे साथ सहानुभूति के बावजूद वे सब यह भी कह सकते थे कि साहब, अब भुगतो। बडे साहब के कहने पर दस्तखत क्या नहीं किए थे? बडे साहब भी क्या करते। उन पर भी तो राजनैतिक दबाव था। राष्ट्रहित की सिर्फ आपको ही पडी थी कि इतनी बडी तादाद म नए सेट्स नहीं खरीदने चाहिए। मजूर कहता—आपका एक्शन ठीक था, पर हम सब बेबस हैं। आजकल कौन पडता है इन झमेलो मे। इसीलिए झमेलो की बजाय सभी को कमीशन की मिठास भाती है। पर आप थे कि पोल तक खोलन की बात करने लगे।

यह सब सोचते-साचत जैस सारी सभावनाओ, सारी कल्पनाआ के आधार ही पतले-पतले धागे बनकर विलुप्त होते चले जा रहे थे। वैसे मुझे रह-रहकर यह एहसास भी होता कि ये सब लोग यहीं कहीं मेरे आसपास हैं, किन्तु असहाय हैं ओर उससे ज्यादा अफसरा से खौफजदा।

डॉ० साहब मुझे चार-पाँच डाटाज-प्लेटे भी बता-समझा गए थे। उन्हे भी मैं बारी-बारी से उतावलेपन के साथ बदल-बदलकर ट्राई कर रहा था। मगर कुछ नहीं था अब वहाँ। स्क्रीन पर धुआँ छा गया था। यहाँ तक कि कमरे म भी उसी धुएँ का असर शुरू हो गया था। धीरे-धीरे कमरा धुएँ से भरने लगा।

इस पर भी मैंने फिर एक बार प्रयत्न किया। डाटा-प्लेट बदली। स्क्रीन पर कुछ शब्द उभरे जिन्ह पढकर मैं स्तब्ध रह गया—'शटअप' ।

तभी जोर-जार से टेलीफोन की घण्टी घरघराने लगी। मैंने आधा मिनट तक इन्तजार किया। वासवदत्ता अभी तक नहीं लौटे थे। तग आकर मैंने ही रिसीवर उठाया। मुझे 'हैलो' कहने का अवसर दिए बिना उधर से धमकाता स्वर सुनाई पडा, "अपने उपकरणो को सिर्फ खेल-तमाशो तक ही सीमित रखा। उस हमारे पास आकर गिडगिडाने दो। उसके भविष्य का फैसला आप नहीं, हम करगे हम!"

यह सुनकर मरी घिग्घी बँध गई। आगे सुनाई दिया, "उसे हमारी खिलाफत का रस चूसने दा, और आप भी अब हमारे काम मे हस्तक्षेप का थोडा फल चखिए।"

टेलीफोन की लाइन कट गई ओर तुरन्त बाद स्क्रीन के शीशे टूटकर इधर-

उधर बिखर गए। पूरा चैम्बर चरमराने लगा।

बडी फुर्ती के साथ मैं चैम्बर से बाहर आ गया। मुख्य द्वार की ओर बढा। मुडकर देखा चैम्बर गिर चुका है। वहाँ खडे वासवदत्ता का चेहरा शर्मसार है। वह लेखक-टाइप शख्स तो न जाने कब का खिसक चुका था।

मैं वापस बाहर सडक पर हूँ—अकेला। मैं फिर से अपने पाँवों की तलाश करने लगा जिनके बलबूते पर ईमानदारी का वास्ता देते हुए प्रतिपक्षी राजनैतिक तथा प्रशासनिक शक्तियों से लोहा लेने का दम भरा करता था।

अब मुझे वासवदत्ता नहीं—मजूर वहीद, रमेश, जयन्त श्रीकृष्ण, भीम शब्बीर जहूर बसल और कुछ ऐसे लोगों की दरकार थी।

मगर देखा—वासवदत्ता मेरे साथ चल रहे थे—"मैंने अपना रास्ता बदल लिया है दोस्त। तीस साल बेकार गँवाए!" जरा रुककर वे आगे बोले—"मेरे कदम अब तुम्हारे साथ इसी जमीन पर चलेंगे।" देखते ही देखते वह लेखक-टाइप मित्र और उनके दूसरे साथी हमारे हमराही बन गए थे। जिन्हें मैंने गीदड-पंक्ति कहा था वे भी अब हमारे साथ थे। आसमान से नहीं अब इसी सख्त जमीन से मोर्चाबन्दी करनी थी। सब को आभास हो चला था—जमीनी रास्ते ही लम्बे कठिन किन्तु सच्चे रास्ते होते हैं।



स्मृति-गीत

नंदनी को गए सिर्फ दो ही दिन हुए थे। बच्चे पहले ही से ननिहाल जा चुके थे। पीछे रह गए अकेले योगेश बाबू।

आज शनिवार था। सुबह ही से योगेश बाबू अपने को उदास-उदास और खोया-खोया हुआ-सा पा रहे थे।

शनिवार वाला बाबा टेर लगाता हुआ, उनके दरवाजे से सीधा आगे निकल गया था। हर दरवाजे पर उसकी दबग आवाज गूँजती थमती, फिर गूँजती और दूर-दूर होती हुई अतत वायुमण्डल मे विलीन हो गई प्रतीत होती रही। इसके बावजूद 'शनि महाराज की जय हो' का आरोह-अवरोह-युक्त स्वर उनके काना के पर्दों मे झनझनाहट पैदा करता रहा।

इस तेल-दान से योगेश बाबू को हमेशा ही अरुचि रही है, चिढ की सीमा तक।

चार रोज पहले नदनी अडोस-पडोस के घरा से होकर घर लौटी थी। दोपहर का समय था। योगेश बाबू ने भी तभी, लच-आवर्ज मे, घर मे प्रवेश किया था।

नदनी ने उनसे कहा—"मैं तो उन्हे साफ मना कर आई।"

इस वाक्य से योगेश बाबू जरा चौंके क्याकि इस वाक्य को वे किसी सदर्भ से

जाड सकने मे असमर्थ बने रहे। वे एकटक नदनी की आर दखने लगे थे।

तब नदनी को अपनी भूल का आभास हुआ। वह झट से आगे बाली ''सखी-सहेलियाँ मथुरा-वृदावन आदि तीर्थ-स्थलो का कार्यक्रम बना रही हैं। कहन लगीं—'नदनी तुझे भी चलना पडेगा। तेरे बिना हम वहाँ कुछ नहीं सुहाएगा।' ''

योगेश बाबू समझ गए। नदनी का चेहरा साफ ही बता रहा था कि वह भी जाना ता चाहती है, किंतु सकोचवश अपनी सखिया का मना कर आई है कि पति अकल पड जाएँगे। अत योगश बाबू ने नदनी का भेज दिया था।

गर्मिया की छुट्टिया के दिन थे। कैलाश और महेश पहले ही अपने मामो के घर जा चुके थे।

आज शनिवार का अवकाश था। वक्त धीरे-धीरे आगे रग रहा था। दोपहर को मेहरी खाना बनाकर खिला गई थी। वे कुछ देर तक अखबार देखते रहे और परिवारजना के विषय मे कल्पना की उडान भरते रहे कि इस वक्त कौन कहाँ, क्या कर रहा होगा? उन्ह हल्की-सी झपकी आई किन्तु शीघ्र ही उठ बैठ। अँधेरा छाने लगा तो मन-बहलाव के लिए नजदीक के कपनीबाग और सडक का चक्कर काट आए, परन्तु मन पर एक बोझा-सा था जिसे वे ठीक से समझ नहीं पा रहे थे और बार-बार उसे झटकने की कोशिश कर रहे थे—'जय हो शनि महाराज की' की टर भी जैसे उनका पीछा कर रही थी, और इस टेर से सटी-सी एक पदचाप। वह पदचाप बेटी रजनी की थी।

नदनी ने जाने स पूर्व उन्ह जस चताया भी कि पीछे वे कहीं उदास-परेशान न हा जाएँ। कहा था—'बच्चो को भेजकर गलती की। अब उनका कोई भरोसा नहीं। उनका दिल लग गया तो पूरे दो महीने की छुट्टियाँ बिताकर ही लौटेगे।'

'तो क्या हो गया? नाना-नानी क लाड से ही तो बच्चो की हेल्थ बनती है। मुझे क्या तकलीफ है! तुम खुले मन से जाओ। इस तरह की कपनी मिलती कहाँ है! वाह! माधुरी मेनका और रूपवती '' वे हँसन लग थे 'हमारे साथ थाडे ही न जाएँगी।'

इस पर नदनी ने थोडा मुँह सिकोडा—अँह! नदनी अच्छी तरह से जानती थी कि वास्तव मे योगेश बाबू को विशेष अतर पडनेवाला नहीं। अपनी विनादप्रियता के साथ-साथ वे अपने म विविध व्यक्तित्व समेटे हुए हैं—बहुत ही भावुक बहुत चिंतनशील गम्भीर एव एकातप्रिय हैं। पढने-लिखने म मन लगाए रहते हैं। दूसरे-तीसरे दिन कोई न कोई मिलने-जुलनेवाला मित्र भी आया रहता है। अतएव वह उनके खाने आदि का प्रबध करके वृहस्पति के दिन चली गई था।

शनि के बाद इतवार को भी उनका मन नहीं लगा। मेहरी दोनों समय खाना बनाने, घर का झाड़ने-पोछने आ रही थी। दोपहर का भोजन कर उन्होंने सरसरी तौर पर अखबार देखा। फिर कोई किताब उठाई। घड़ी की ओर दृष्टि गई तो ऐसे ही कोई फिल्म देखने ढाई बजे घर से निकल गए। फिल्म में एक विवाह-दृश्य को बहुत लंबा खींचा गया था। वे उठकर घर लौट आए।

संध्या को कुछ ठंडक हुई। हवा चलने लगी थी। वे फोल्डिंग चेयर लेकर लॉन में आ बैठे।

फिल्म के विवाह-दृश्य ने उनके सम्मुख रजनी बेटी को ला खड़ा किया। ढाई माह पूर्व बड़ी धूमधाम से उन्होंने रजनी की शादी की थी। अब वह अपने पति के संबंधियों से मिलने, पति के साथ अमेरिका चली गई थी। उसके शीघ्र वापस आने की संभावना नहीं थी। और अब आने पर उसे यहाँ थोड़े ही रहना है! उन्होंने सोचा।

विवाह-पूर्व ही बेटी की विदाई की कल्पनामात्र से ही योगेश बाबू बहुत भावुक हो उठते थे। वास्तविक विदाई के उपरान्त एक बार तो वे जैसे ढह ही गए थे। तब पत्नी के अनुरोध पर उसे (नंदनी को) भी अपने विभागीय कार्यक्रमों के निमित्त दो-तीन स्टेशन साथ लेकर घूम आए थे। इस तरह अब जाकर वे कहीं धीरे-धीरे सँभलने लगे थे।

योगेश बाबू सोचने लगे—और कोई घर पर हो न हो, पर बिना बेटी रजनी के, घर एकदम सूना-सूना हो उठता है। वही घर की असली रौनक थी। रजनी के साथ विचार-विमर्श। कई बार तो वह इतना बोलती और अपने प्वॉइंट्स पर अड़ जाती कि योगेश बाबू उसके तर्क-वितर्क को कुतर्क की संज्ञा दे देते कि तूने तो मेरा माथा चाट डाला। इसके बावजूद वे उसका सिक्का मानते। राजनैतिक, सामाजिक तथा औषध-विषयों पर रजनी की पकड़ खासी गहरी थी। इतना सब होते हुए भी एक बात रजनी उन्हें कभी समझा नहीं पाई। बस इसी एक बात को लेकर पिता और पुत्री में झड़प होती थी।

रजनी हर शनिवार को बाबा को तेल डालती थी। योगेश बाबू इसके सख्त खिलाफ थे। वे कहते—'तूने पूरी एम०एस-सी० तक विद्या पढ़ी है। बताओ, इस तेल-दान की क्या जरूरत है?'

रजनी कहती—'सभी देते हैं, हमारे घर से क्या खाली जाए?'

योगेश बाबू की जबान हल्की-सी तल्ख हो उठती—'यह तो कोई जवाब न हुआ!'

कुछ रोज बाद रजनी कहीं से कोई फटे-पुराने पीले पृष्ठोंवाला एक गुटका उठा लाई, जिसमें तेल-दान की महिमा का वर्णन था।

इससे योगेश बाबू और चिढ़ गए। कहा—'यह तो माँगनेवाला के दिमाग का उत्पादन है ताकि उनकी पीढ़ियाँ-दर-पीढ़ियाँ मुफ्त म खाती चली जाएँ। इतने मोटे मुस्टडे आम जनता को कैसे उल्लू बनाते हैं।'

इस पर रजनी रूठ जाती। वे उसे मनाते।

यागेश बाबू सोचते हैं, यहीं आकर रजनी उनसे हार-सी जाती। कनविंस नहीं कर पाती। फिर भी अपनी जिद पर कायम थी। इसलिए न चाहते हुए भी बाप-बेटी मे यदा-कदा नोक-झाक चलती रहती। नदनी बीच-बचाव करती। पति से कहती—'इससे घर म क्या फर्क पडता है ?'

'सवाल उस फर्क का नहीं। दिमाग के फर्क का है। मैंने अपने तमाम विद्वान् साथिया से पूछ दखा है। किसी के पास भी इसका विज्ञान-सम्मत उत्तर नहीं है।' इसलिए न चाहते हुए भी मैं उसे टोकने से बाज नहीं आता।

रजनी क विवाह स चार मास पूर्व सचमुच योगश बाबू न रजनी का टोकना कतई बद कर दिया था। हाँ एक बार उन्हाने बाबा से अवश्य कहा था—'बाबा कुछ सप्ताह की बात और है। ल लो यह दान-दक्षिणा। फिर तो बिटिया पराइ हो जाएगी।'

'जैसी आपकी इच्छा भगवन्।' कहकर बाबा तल समेटता हुआ चला गया था।

तब कितनी ही देर तक योगेश बाबू मुँह औंधा किए बेडरूम मे पडे रहे थे।

शादी स अगले शनिवार बाबा उसी प्रकार अपने चिर-परिचित स्वर से टेर लगाता हुआ योगेश बाबू के दरवाजे पर आ खडा हुआ था—'शनि महाराज की जय।'

योगेश बाबू बाहर आए थे—'बाबा बिटिया चली गई।' कहते-कहते उनका गला भर आया था कि अभी रो देंगे।

जल्दी से नदनी कटोर म तल भर लाइ थी—'लो बाबा इस बार तो ले जाओ।'

दोनो पति-पत्नी आँगन म आकर सीढिया के पास बैठ गए थे—नि शब्द। कुछ देर बाद योगेश बाबू आँखो को रूमाल से दबाए अपने कमरे मे चले गए थे।

शनिवार दफ्तर की छुट्टी होती। वे सैर करने सुबह-सवेरे दूर तक निकल जाते। देर से घर लौटते तो भी प्राय बाबा की घरघराती आवाज कानो मे कोई खट्टा-मीठा घोल घोल देती। बाबा की यह आवाज सुनाई न भी दे तो भी शनिवाले दिन 'शनि महाराज की जय हो' का सगीत सुबह से शाम तक योगश बाबू पर छाया रहता।

सोमवार से योगश बाबू दफ्तर जान लगे थ और हर प्रकार स अपने को व्यस्त

रखने लगे थे। शुक्रवार को मित्रमडली के साथ गई रात तक घूमते-घामते रहे थे।

शनिवार सुबह देर तक सोते रह गए कि एकाएक बाबा की आवाज से चौंककर उठ बैठे थे। दहलीज म जाकर देखा—बाबा आसपास के घरो से होता हुआ आगे निकल रहा था। बाबा से उनकी आँख मिली थीं। दोनो ने एक-दूसरे को अभिवादन किया था। योगेश बाबू खुद दो कदम आगे बढकर बाबा के साथ बतियाने लगे थे।

बाबा बेटी रजनी का ही हाल पूछ रहा था। बार-बार उसके गुणो का बखान कर रहा था। उसके सुखद गृहस्थ-जीवन की कामना करता हुआ असीस दे रहा था।

तीसरे रोज दोनो बेटे कैलाश और महेश अचानक आ पहुँच थे। रह-रहकर नाना-नानी की बात करते। मामा-मामियो की खुशमिजाजी का वणन करते—"खूब मन लगा! मगर आपके लिए, मम्मी के लिए दिल उदास हो गया। अब हम इधर आए तो मम्मी गायब।"

इसके दूसरे दिन नदनी भी आ पहुँची थी। घर फिर से रौनक से भर गया। बार-बार सभी रजनी की बात करते। कैलाश कहता—"दोनो मामियाँ एक ही बात बोलतीं तुम्हारे घर मे कोई है तो रजनी। रजनी का कोई जवाब नहीं! लडकी हो तो बस रजनी जैसी।"

योगेश बाबू सोचने लगे—पर अब रजनी यहाँ कहाँ है ? हाँ, अब इस घर मे न होकर भी यहीं कहीं आस-पास मौजूद है। पूरे मुहल्ले म उसकी चर्चा होती है। वह यहाँ-वहाँ सभी जगह व्याप्त है विशेष रूप स बाबा के सुर मे।

अगले शनिवार को योगेश बाबू सैर से शीघ्र ही लौट आए।

कुछ देर बाद बाबा की चिर-परिचित टेर सुनाई दी—'शनिवार महाराज की जय हो!' और धीरे-धीरे पदचाप उन्हीं के दरवाजे पर आकर ठहर गई।

कैलाश ने कुडी खोलते हुए कहा—'तुम्हे तो मना कर रखा है न बाबा ?'

पीछे से योगेश बाबू का स्वर सुनाई दिया—'नहीं, ठहरो!' नदनी ने उनकी ओर देखा।

योगेश बाबू ने भी उसकी ओर स्मित-भाव से देखने का प्रयास किया।

नदनी न उनसे अधिक सवाद की अपेक्षा नहीं की। उनके कहे दो शब्दो मे ही उसने आर्द्रता को लक्ष्य कर लिया था।

नदनी कटोरे मे तेल लेने चली गई तो आहिस्ता-आहिस्ता वे अपने कमरे की ओर बढ गए।

●●●